॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्री गोपीजनवल्लभाय नमः ॥

॥ श्री वाक्पतिचरणकमलेभ्यो नमः ॥

● श्रीमद्भागवत महापुराण ●

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध)

श्रीमद्वल्लभाचार्य–विरचित **सुबोधिनी टीका** (हिन्दी अनुवाद सहित)

श्रीमद्भागवत–स्कन्धानुसार ५६वाँ अध्याय

श्री सुबोधिनी अनुसार ५३वाँ अध्याय

राजस-साधन-अवान्तर-प्रकरण

"७वाँ अध्याय"

स्यमन्तकमणि की कथा, जाम्बवती और सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह

कारिका—सप्तमे कामतः प्रोक्तो विवाहस्तामसः परः ।
सात्त्विकश्च प्रसङ्गेन क्लेशेनोभे निवारिते ॥१॥

क्लेशापनोदनार्थाय चौर्यमत्र निरूप्यते ।
वाचिकं कायिकं चैव कायेन वचनेन च ॥२॥

सम्बन्धो च तथा भक्तः स्वापराधापनुत्तये ।
सत्यभामा जाम्बवती ताभ्यां सम्यक् निरूपिते ॥३॥

गुणा एतास्ततोऽग्रे तु विद्यारूपा निरूपिताः ।
एवमष्टौ महिष्यो हि सात्त्विक्यस्तु ततः पराः ॥४॥

विवाहाः सप्त कामेन कृपया तु सहस्रशः ।
विधितस्त्वेक एवोक्तो द्वयोरत्र निरूप्यते ॥५॥

कारकार्थ— सातवें अध्याय में जो विवाह कहे हैं, वे काम से किए हुए हैं, उनमें से जाम्बवती का विवाह तामस है और सत्यभामा का सात्त्विक है; इन दोनों के विवाह तामस सात्त्विक कहने से शेष रुक्मिणी का विवाह स्वतः राजस सिद्ध है. यद्यपि रुक्मिणी जाम्बवती को विवाह भगवत्परिग्रह होने से सात्त्विक कहे जा सकते हैं, किन्तु उनको सात्त्विक न कहने का कारण यह है कि वे दोनों भगवान् क्लेशों से लाये हैं, अतः वे सात्त्विक विवाह नहीं है, सत्यभामा को पिता ने लाकर दान कर दी, जिससे उस विवाह में क्लेश न हुआ, जिससे वह सात्त्विक है, इसके विवाह में क्लेश न होने का कारण चौर्य प्रसङ्ग है, जिसका यहाँ वर्णन किया गया हैं, सत्राजित ने वाणी से झूठा कलङ्क लगाकर वाचिक और स्वयं गुफा में जाकर युद्ध किया, जिससे कायिक दोष किया, शतधनु के वचन से उस मिथ्या अभिशाप को मिटाया, ऐसे सत्राजित ने और भक्त जाम्बवान् ने अपने अपराध को मिटाने के लिए दोनों ने आकर सत्यभामा और जाम्बवती भगवान् को अर्पण की, सत्यभामा तथा जाम्बवती के विवाह का कारण वाचिक और कायिक मिथ्याभिशाप था, जिसका निरूपण किया। ये रुक्मिणी, जाम्बवती और सत्यभामा; रजो, तमो और सतोगुण रूप हैं, आगे तो विद्या रूप से इनका निरूपण हुआ है। इस प्रकार आठ महिषियाँ सात्त्विक गुण वालियाँ हैं और सात काम से हैं, कृपा से तो सहस्रों किए हैं,विधि अनुसार तो एक ही कहा है। इस प्रसङ्ग में दोनों का विवाह चौर्य प्रकरण में निरूपण किया है ॥१–५॥

— इति कारिका सम्पूर्ण —

आभास— रुक्मिण्या विवाहं पुत्रसम्पत्तिं चोक्त्वा, निमित्तवशात् सत्यभामाया विवाहमाह **सत्राजित** इति।

आभासार्थ—रुक्मिणी का विवाह और पुत्र सम्पत्ति को कहकर, कारणबश 'सत्राजितः' श्लोक से सत्यभामा के विवाह का वर्णन शुकदेवजी करते हैं।

श्लोक—श्रीशुक उवाच–**सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः।**
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥१॥

श्लोकार्थ—श्री शुकदेवजी कहने लगे कि हे राजन्! सत्राजित् ने भगवान् का अपराध किया था, उस अपराध का दोष निवृत्त हो, इसलिए सत्राजित् ने स्वयं आकर श्यमन्तकमणि सहित अपनी कन्या भगवान् को अर्पण की ॥१॥

सुबोधिनी— सत्राजित्शब्दः तकारान्तः। अकारान्तोऽपि। सत्रान् रक्षकसहितानपि जयतीत्यर्थे क्विप्। सत्राणां जितं यस्मादिति क्तान्तेन बहुव्रीहौ अदन्तता भवति। एतदधीन एव महतामपि जय इति द्वितीयोर्थः। स्वतनयां स्वयमुद्यम्य दत्तवानिति। अप्रार्थितः अनभिप्रेतश्च। तथापि दाने हेतुः कृतकिल्बिष इति। कृतापराधः। तदपराधदूरीकरणार्थं स्यमन्तकेन मणिना सह। यत्कृते अपराधः तदपराधनिमित्तं दण्डार्थे कन्यां च दत्तवान्। संक्षेपकथेयमिति केचित्। वस्तुतस्तु न समाधिभाषा। नह्युदारलीलावतः अपकीर्त्यादिकं समाधिकार्यं भवति। भक्तिसाधकानामेव चरित्राणां वक्तव्यत्वात्। कृतकिल्बिष इति। यथाकथञ्चिदपराधोऽपि सम्भवति। अतोऽनभिप्रेतत्वेन कल्पान्तरत्वेन वा अवचनम्। वस्तुतः सत्यभामा सरस्वत्यंशा भूम्यंशा वेति तस्या विवाहार्थं तथोद्योगो भगवतैव कृतः। स्वीकारोऽत्र वक्तव्यो राजसानाम्, तदर्थं स्त्रीप्रकरणे सत्यभामादीनां परिग्रहमात्रमत्र वक्तव्यम् ॥१॥

व्याख्यार्थ – भगवान् ने सत्राजित से कन्या माँगी नहीं थी और न अभिप्रेत ही थी, तो भी सत्राजित ने स्वयं कन्या अर्पण की, जिसका कारण है कि सत्राजित ने भगवान् का अपराध किया था, जिसे मिटाने के लिये स्यमन्तकमणि लाकर दी और अपराध करने के दण्ड रूप में कन्या अर्पण की है, कोई कहते हैं कि यह कथा संक्षेप में कही गई है, वास्तविक रीति से तो यह कथा समाधिभाषा नही है, क्योंकि, उदार लीला करने वालों की अपकीर्ति आदि समाधिभाषा का कार्य नहीं हो सकता है. समाधिभाषा में तो भक्ति साधक चरित्र ही वक्तव्य होते हैं, यहां केवल प्रथम श्लोक समाधिभाषा है, विस्तार जो है वह लौकिकी भाषा है, जैसे तेसे कभी अपराध भी होता है, अतः अभिप्रेत न होने से वा कल्पान्तर की कथा होने से नहीं कहा है, वस्तुतः सत्यभामा तो सरस्वती अथवा पृथ्वी की अंश रूपा है, इसलिये उसके विवाह के लिये भगवान् ने ही वैसा उद्योग किया है, यहां राजसों का स्वीकार वक्तव्य है, उसके लिये यहां स्त्री प्रकरण में सत्यभामादि का ही परिग्रह मात्र कहना चाहिये, मात्र पद से यह सूचित किया है कि रुक्मिणी विवाह के प्रसंग में जो विस्तार किया है, वह समाधि भाषा नहीं है, किन्तु लौकिकी भाषा है, इसलिये ही आचार्य श्री ने टीका में मात्र पद दिया है।

आभास—नन्वाकाङ्क्षापूरणाभावात् संक्षेपपरत्वमेव कुतो न भवतीति चेत्। मैवम्। मित्रविन्दाविवाहवद्यावदुक्तं नैव आकाङ्क्षानिवृत्तिसम्भवात्। विशेषं पृच्छति।

आसाभार्थ—यदि कहो कि आकांक्षा पूर्ति के अभाव से संक्षेप पर है यों क्यों न कहा जावे तो कहते हैं कि इस प्रकार मत कहो, मित्रविन्दा के विवाह की भाँति सारा कहने से ही आकांक्षा निवृत्ति होती है अतः राजा पूछता है "सत्राजितः" श्लोक से।

श्लोक—राजोवाच–**सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम्।**
स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥२॥

श्लोकार्थ—राजा ने कहा–हे ब्रह्मन्! सत्राजित ने कृष्ण का कौन सा अपराध

किया ? स्यमन्तकमणि उसके पास कहाँ से आई ? उसकी कन्या भगवान् को किस कारण से दो ? ॥२॥

सुबोधिनी—सत्राजित इति । ब्रह्मन्निति ज्ञानार्थम् । कृष्णस्य सदानन्दस्य कथं वा कोऽप्यपराधं कुर्यात् । तत्रापि पालकस्य । अपराधनिमित्तः स्यमन्तको वा भगवद्भक्तानां कुतः । देवतान्तरभजनात् तथात्वे कथं वा तस्य निरोधे सम्बन्ध इति प्रश्नाभिप्रायः । विरुद्धानामपकारकरणं युक्तम् । तथा सति तेषां सर्वस्वेन सह कन्यादानं चायुक्तम्, तस्मात् कथमयमुभयात्मक इति । कस्माद्धेतोः सुतां दत्तवान् । कन्यापि सूर्यदेव प्राप्ता वरलब्धा, न तु तस्य औरसी, भगवान् नन्दपुत्र इव तस्यापि कन्येति पुराणान्तरव्यवस्था । अत एव यादवानां विवाहदोषो न शङ्कनीयः । अत्रापि 'स्त्रीरत्नं रत्नमेव चे'ति वाक्यात् देवादेव प्राप्तमिति लक्ष्यते । भगवानपि अक्लिष्टकर्मा सगोत्रापक्षे विवाहं न कुर्यात् ॥२॥

व्याख्यार्थ - हे ब्रह्मन् ! संबोधन श्रीशुकदेवजी को इसलिये दिया है कि आप को सबका ज्ञान है, जिससे आप सब कुछ बता सकोगे, सदानन्द स्वरूप तथा पालक कृष्ण का कैसे कोई भी अपराध कर सके ? भगवद्भक्तों का स्यमन्तक अपराध का कारण कैसे हो सकता है ? अन्य देव के भजन से यों होते हुए, फिर उसका निरोध में सम्बन्ध कैसे ? यह प्रश्न करने का अभिप्राय है जो विरोध करते हैं उनका अपकार करना योग्य ही है, यों होने पर उनको सर्वस्व के साथ कन्यादान करना तो उचित नहीं है इस कारण से यहां दोनों बात कैसे ? किस कारण से कन्या दी, वह कन्या सूर्य देव के वर में प्राप्त हुई थी, उसकी ओर से पुत्री न थी जैसे भगवान् नन्द का पुत्र है वैसे यह कन्या इसकी पुत्री थी, अन्य पुराण का यह निर्णय है, इस कारण से इससे विवाह करने में यादवों को दोष नहीं हैं, भागवत में भी स्त्री रत्न, रत्न ही है इस वाक्य से, देव से ही प्राप्त हुई जानी जाती है भगवान् भी अक्लिष्ट कर्मा हैं, जिससे सगोत्र का विवाह नहीं कर सकते ॥२॥

आभास—विस्तरेण वक्तुं कथामारभते **आसीदिति** ।

आभासार्थ—विस्तार से कहने के लिये 'आसीत्सत्राजितः' श्लोक से कथा प्रारम्भ करते हैं ।

श्लोक—श्रीशुक उवाच-**आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ।**
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥

श्लोकार्थ—श्री शुकदेवजी ने कहा—सत्राजित भक्त का सूर्य स्वामी होते हुए भी परम मित्र था, जिससे सूर्य ने प्रसन्न होकर उसको स्यमन्तक मणि दी थी ॥३॥

सुबोधिनी—स्वतन्त्रकथेयमित्यप्यासीदित्यनेन सूचितम् । सत्राजित आसीदिति भिन्नं वाक्यम् । तस्य महत्त्वं ख्यापयितुमाह । सूर्योऽपि भक्तस्य परमः सखा आसीदिति । भक्तस्य सख्यं शीघ्रं प्रयच्छतीति सूर्यस्य स्वभावो वर्णितः । अनेन सूर्यः परमदयालुः, अल्पेऽपि भजने बहु प्रयच्छतीति

निरूपितम्। ततो यज्जातं तदाह **प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादादिति**। मणिः स्यमन्तकः। कुत्रत्यो मणिरित्याकाङ्क्षायामाह **सूर्य इति**। स हि मणिं सूते। सर्वमेव सूर्यात्प्रभूतमिति तस्य मणिमात्रप्रसवे न दूषणम्। तदर्थमेव मणिरुत्पादित इति लक्ष्यते। यतः **प्रीतः**, तस्य भक्त्या संतुष्टः, स्यमन्तकमुत्पादितवान्। उत्पाद्यापि ततोऽपि प्रीतः प्रकर्षेणादात्। तस्मिन् सामर्थ्यं स्थापयित्वा अदात्। प्रकर्षेणैव दानात् भोगार्थं भोगसाधनसम्पादनार्थं च तज्जातमिति लक्ष्यते ॥३॥

व्याख्यार्थ—"आसीत्" पद से यह भी बताया है कि वह स्वतन्त्रक था है, "सत्राजित था" यह प्रथक् वाक्य है उसका महत्व प्रकट दिखाने के लिये कहा है कि, सूर्य देव स्वामी होते हुए भी भक्त का परम मित्र था,सूर्य का स्वभाव ही ऐसा है,जो भक्त का शीघ्र ही सखा बन जाता है इससे यह सिद्ध हुआ कि सूर्य परम दयालु है, थोड़ा भी भजन करने से बहुत देता है यह निरूपण किया, उसके अनन्तर जो हुआ जिसका वर्णन करते हैं कि सूर्य ने प्रसन्न होकर उसको मणि दी, मणि का नाम स्यमन्तक था, वह मणि सूर्य के पास कहां से आई ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा है, कि सूर्य स्वयं मणि को उत्पन्न करता है, मणि को उत्पन्न करने में सूर्य के लिये किसी प्रकार का दोष नहीं है, क्योंकि जब सब सूर्य से पैदा हुआ है, तो मणिमात्र उत्पन्न करने में कौनसा दूषण उसको लगता है, यों जाना जाता है यह मणि इसके लिये पैदा की है क्योंकि इस पर भक्ति से प्रसन्न हुआ है जिससे मणि को पैदा किया है, न केवल पैदा ही की, किन्तु उससे भी विशेष प्रसन्न हो उसमें अपना सामर्थ्य स्थापित कर प्रसन्नता से मणि इसको दी, प्रसन्न हो के देने से वह मणि भोग और भोगके साधनों का साधक भी हुई यों जाना जाता है ॥३॥

आभास—अतस्तस्य प्रथमतो भोगमाह **स तं बिभ्रदिति**।

आभासार्थ—इसी कारण से "स तं बिभ्रत्" श्लोक में पहले उसके भोग का वर्णन करते हैं।

श्लोक—स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः।
प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥४॥

श्लोकार्थ—वह सत्राजित कण्ठ में उस मणि को धारण करने से सूर्य के समान प्रकाशमान हो गया और द्वारका में प्रविष्ट हुआ तो उसके तेज से इसको किसी ने नहीं पहचाना ॥४॥

सुबोधिनी—स्वतेजस्तस्मिंस्थापितमिति तद्धारणेन सूर्य एव धृतः। अत एव तत्प्रभावाद्यथा रविः, तथा भ्राजमानो जातः। स चेदन्यत्र तिष्ठेत्, न काप्यनुपपत्तिर्भवेत्। सूर्यश्च रक्षको भवेत्। स पुनस्तद्गृहीत्वा द्वारकास्थितान् भक्तान् वञ्चयन्निव समागतः। ततः सूर्येण उपेक्षित इत्यभिप्रायं वक्तुं तस्य द्वारकाप्रवेशमाह **प्रविष्टो द्वारकामिति। राजन्निति** सम्बोधनमन्यविषये अन्यो रक्षां न करोतीति ज्ञापयितुम्। तस्य मनोरथः सिद्ध इत्याह **तेजसा नोपलक्षित इति** ॥४॥

व्याख्यार्थ—सूर्य ने मणि में अपना तेज स्थापित किया था, जिसके धारण करने से मनो

सत्राजित ने सूर्य को धारण किया है,इस कारण उसके प्रभाव से जैसा सूर्य है वैसा ही यह चमकनेलगा। यदि दूसरे स्थान पर मणि धारण करके जाता तो किसी प्रकार हानिनहीं होती.क्योंकि वहां सूर्य रक्षा कर सकते, किन्तु वह तो मणि ग्रहण कर, द्वारका में स्थित भगवद्भक्तों को ठगने के लिये आया, जिससे सूर्य ने प्रसन्न हो, इसकी उपेक्षा की, इसकी उपेक्षा की, इस अभिप्राय को प्रकट करने के लिये इसका द्वारका में प्रवेश का वर्णन किया है, राजन् यह सम्बोधन इस बातको जताने के लिये दिया है कि, दूसरों के कार्यों में कोई दूसरा रक्षा नहीं करता है उसका मनोरथ इतना ही था, कि मुझे कोई पहचाना न सके। वह सिद्ध हुआ, मणि के धारण करने से पहचानने में नहीं आया ॥४॥

आभास—तस्य प्रभावः सर्वजनीनो जात इति वक्तुं लोकानां भ्रममाह तं **विलोक्येति** ।

आभासार्थ– उसका प्रभाव सब मनुष्यों पर हुआ, यह बतलाने के लिये लोकों को भ्रम का वर्णन 'तं विलोक्य' श्लोक में करते हैं।

श्लोक—**तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ।**
दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥५॥

श्लोकार्थ—लोक उसको दूर से देखकर, तेज से चकाचौंध दृष्टि हो गए, तब चौपड़ खेल रहे भगवान् के पास कोई आकर कहने लगा कि कदाचित् सूर्य आ रहा है ॥५॥

सुबोधिनी– निकटे ज्ञायेतापि । दूरादेव तत्रापि तेजसा मुष्टदृष्टयः । स्वस्वामिनः स्थाने महान्तोऽपि समायान्तीति संतोषात् भगवत्स्थाने समागताः । भगवानपि अन्यासक्तः नास्य सन्माननं करिष्यति, ततोऽयं अस्मान् विलम्बितः तेजसा पीडयिष्यतीति, सूर्यात् शङ्किताः लौकिकव्यसनरूपे द्यूते अक्षैर्दीव्यते भगवते शशंपुः । शतमक्षान् विजानातीति मध्येऽधिदेवन एव सभ्ये अक्षक्रीडेति विमर्शः । अन्यथा धर्मस्थापनार्थमवतीर्णः कथमक्षक्रीडां कुर्यात् । मुख्यं हि तदधर्मस्थानमिति । सूर्यस्य समागमनं बाधितं मत्वाह **भगवत** इति ॥५॥

व्याख्यार्थ—निकट हो तो पहचान भी जाय, यह तो दूर थे और वहां से ही तेज के कारण नेत्रों की दृष्टि चकाचोन्ध हो गई अतः पहचान न सके। मन में समाधान किया, कि हमारे स्वामी के स्थान पर महान् आत्माएँ भी आती हैं यों संतोष कर भगवान् के स्थान पर गये, वहां देखा कि भगवान् तो अन्य कार्य में आसक्त हुवे हैं अतः इसका सम्मान अब नहीं करेंगे, इस कारण से वह हम को बहुत समय तक पीड़ा करेगा, क्योंकि मन में शंका होने लगी थी कि यह सूर्य है, अतः लौकिक व्यसन रूप चौपड़ का खेल खेलत हुए भगवान् को कहने लगे, विशेष प्रकार से चौपड़ खेलने वाले राजा लोगों को अधिदेवन के दिन चौपड़ खेल खेलने में कोई दोष नहीं, यों करने से उनको निद्रा भी नहीं आती है यों न होता तो धर्म स्थापन के लिये अवतार लेने वाले चौपड़ कैसे खेले ? चौपड़ के

खेल का स्थान मुख्य अधर्म का स्थान है, "भगवते" पद से यह बताया कि यह आगमन सूर्य का नहीं है, केवल लोगों को आशंका हुई है ।५।।

आभास— सूर्यागमनेन स्वतोपि ज्ञातमहत्त्वाः स्तुत्वा भगवन्तं विज्ञापयन्ति **नारायणे**तित्रिभिः ।

आभासार्थ लोक स्वतः सूर्य के महत्व को जानते है अतः सूर्य का आगमन समझकर, भगवान् की पहले स्तुति करते हैं, अनन्तर प्रार्थना करते हैं कि सूर्य देव आ रहा है यह वर्णन "नारायण" इन तीनों श्लोकों से करते है ।

श्लोक—**नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ।**
दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ।।६।।
एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ।
मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ।।७।।
नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ।
ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ।।८।।

श्लोकार्थ—हे शङ्ख चक्र गदा धारण करने वाले नारायण ! हे दामोदर ! हे कमल नयन ! हे गोविन्द ! हे यदुनन्दन ! हे जगत् के पति ! यह तेज किरणों वाले, किरणों के समूह से मनुष्यों के नेत्रों की दृष्टि को हरण करते हुए, सूर्य नारायण आपको देखने (मिलने) के लिए आ रहे हैं । हे प्रभु ! त्रिलोकों में जो श्रेष्ठ देवता हैं, वे भी आपके मार्ग को ढूँढ़ने की इच्छा करते हैं, यादवों में गुप्त विराजमान आपको जानकर सूर्य नारायण दर्शन के लिए आज आ रहे हैं ।।६-८।।

सुबोधिनी—नारायणपदं सूर्यान्तर्यामी नारायण इति तस्मिन्नागते अन्तर्यामिप्रेरणव्यतिरेकेण कार्यं न सिध्यतीति विज्ञापनार्थं सूर्यागमनं सम्भवतीति हेतुरुक्तः । अतस्ते नमः । नमस्कारमात्रं वा अस्मत्साध्यमिति । **शङ्खचक्रगदाधरेति** । शेषशायिनं नारायणं व्यावर्तयति । नारायणत्वं वा स्थापयन्ति । **दामोदरेति** भक्तकृपालुत्वम्, तादृशस्यात्रागमने हेतुरुक्तः । **अरविन्दाक्षेति** । समागतस्य तापापनोदनं कार्यमुक्तम् । **गोविन्देति** तथाकरणे आवश्यकत्वम् । यतोऽयमिन्द्रो जातः । किञ्च, **यदुनन्दनेति** तदर्थमेवावतीर्णः ।

अत एवात्र बहु कार्यं तवास्तीति स्वत आगमनाभावात् स्वयमागत इत्याहुः **एष आयातीति** । आगतस्य विज्ञाप्यमस्तीत्याहुः **सवितेति** । प्रसवितायम् । सांप्रतं च भगवान् लीलया च तिष्ठतीति तदनुगुणप्रसवार्थं प्रष्टुमागत इत्यर्थः । प्रश्नस्तु दूतद्वारापि सम्भवतीति विशेषमाहुः **त्वां दिदृ-**

क्षुरिति । स्नेहाभावेऽपि दर्शनमावश्यकमित्यत्र हेतुमाहुः **जगत्पत** इति । स्वस्य निवेदने हेतुं वदन्त आहुः **मुष्णन्गभस्तिचक्रेण**इति । दूरे स्थितस्य गभस्तयोऽल्पीयांसः समायान्ति, निकटे तु गभस्तिचक्रेण पीडयति । **नृणामित्यल्पसत्त्वता** । तर्ह्यं दोषो निवारणीय इत्याशङ्क्य तस्य स्वाभाविकोऽयमित्याह **नृणां चक्षूंषि तिग्मगुरिति** । ज्ञानप्रदो भगवान् अत्र समागतः । ज्ञानसाधनमेव दूरीकरोतीति प्रतिविधेयः ।

ननु तथापि भवन्तोन्तरङ्गाः, तान्निवारयतेति चेत्, तत्राह **नन्वन्विच्छन्तीति** । देवाः समागच्छन्तः कथं वारणीयाः, तत्रापि स्वप्रभुं द्रष्टुम्, तत्रापि विबुधर्षभाः । किञ्च । अद्य यदुषु गूढं ज्ञात्वा समागताः । तत्र यदि कश्चिन्निवारणं कुर्यात्,तदा अनेनैव प्रतार्यत इति तमेव मारयेयुः। ननु तथापि सूर्यो नायास्यति, स हि सर्वदा व्यापृतः, तत्राह **द्रष्टुं वायात्यज** इति । ब्रह्मा वा द्रष्टुमायाति । अवतीर्णस्य रूपान्तरस्वीकरणेनान्यथात्वे पूर्वव्यवहारोऽनुचित इत्याशङ्क्याह **प्रभो** इति । हे सर्वसमर्थ ॥६-८॥

व्याख्यार्थ– आप सूर्यान्तर्यामी नारायण हैं, उनके आने पर ही कार्य सिद्ध होता है क्योंकि अन्तर्यामी की प्रेरणा के सिवाय कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है, यों जताने के लिये सूर्य का आगमन बन सकता है, यह हेतु कहा है, अतः आपको नमस्कार है, नमस्कार के सिवाय विशेष तो हम से हो नहीं सकता । शंख,चक्र और गदा को धारण करने वाला विशेषण देने से शेष नारायण से पृथक्ता दिखाई, अथवा नारायणत्व की स्थापना की है, 'दामोदर' नाम से यह बताया है कि आप सदैव भक्त पर कृपा करते हैं, भक्त कृपालुत्वही आपके यहां आने का कारण है, 'कमलनयन' नाम से बताया है, कि आप यहां पधार कर विरही भक्तों के ताप दूर करने का कार्य करते हैं 'गोविन्द' नाम से यह बताया है कि आपको यों करना आवश्यक है कारण कि आप इन्द्र बने हैं, विशेष में आप 'यदुनन्दन' हैं, जिससे आपने इसके लिये ही अवतार लिया है ॥६॥

आपको यहां बहुत कार्य हैं जिससे सूर्य ने समझा, कि आप का आगमन न हो सकेगा अतः स्वयं वह आया है, आये हुवे को कुछ जानने वा पूछकर कार्य करने की इच्छा है इसलिये 'सविता' नाम दिया है, इस समय भगवान् लीला कार्य करने में स्थित हैं अतः उसके अनुकुल कार्य करने आप से पूछने के वास्ते आया है, यदि पूछना है तो दूत द्वारा भी पुछा सकता है, फिर आया क्यों ? इसके उत्तर में कहा है, कि केवल पूछना नहीं है, किन्तु उसको आपके दर्शन की भी इच्छा थी इसलिये भी आया है, स्नेह होने पर भी आपका दर्शन करना आवश्यक है क्योंकि आप जगत् के स्वामी हैं, हम आपको इसलिये निवेदन करते हैं कि यह सूर्य तेज किरणों वाला है जिसके तेज से हमारे नेत्र चकाचौंध हो कर पीड़ित हो रहे हैं, दूर में स्थित की किरणें थोड़ी चकाचौन्ध करती है, हम मनुष्य अल्पबलवाते हैं, जिससे यह पीड़ा सहन नहीं कर सकते हैं, क्योंकि यह इसके लिये स्वाभाविक है, जो मनुष्यों के नेत्रों का अपने तेज रश्मियों से चकाचौन्ध कर पीड़ित करे, यहां ज्ञान देने वाले भगवान् आये हैं, ज्ञान साधनों को दूर फेंक देते हैं अत. इनका समादर स्वागत करिये ।

हम क्यों करें, आप भी हमारे अन्तरंग है, आप ही इनका निवारण करो, यदि आपका इस प्रकार कहना हो, तो उसके लिये हमारा निवेदन है, कि देवता आपके यहां मिलने, दर्शन करने वा किसी कार्य के लिये आवे उनको कैसे रोका वा लौटाया जाय ? आप उनके स्वामी है, स्वामी के दर्शन के लिये आते हैं और आने वाले देवों में श्रेष्ट देव आते हैं और विशेषता तो यह है, कि आप यादवों

में गुप्त रूप से पधारे हैं, आज इस गोप्य को जान कर आये हैं, ऐसी स्थिति में कोई उनको रोके, तो वे समझेंगे, कि यह ही हम से प्रवंचना करता है यों समझ, उसको ही मारे, आप ज्यों समझते है कि सूर्य आ रहा है यों नहीं है वह न आवेगा क्योंकि उसको बहुत काम है जिनमें रुका हुआ रहता है, यदि वह नहीं है, तो कदाचित ब्रह्मा दर्शन के लिये आ रहा है, अवतार लेने पर दूसरा रूप धारण होता है, इसलिये उस अन्य रूप में पहलेसा व्यवहार करना उचित नहीं है, यदि यों कहो तो वह बात असमर्थों के लिये है, आप तो 'प्रभु' होने से सर्व समर्थ हैं कोई रूप धारण करे, तो भी वे के वे हा हैं बदलते नहीं हो, अतः श्रेष्ठ देव आते ही रहते हैं ॥६-७-८॥

आभास—तदा भगवान् कर्म न परित्याज्यमिति स्वयं तथैव स्थितः प्रजानां मोहं दूरीकृतवानित्याह **निशम्येति** ।

आभासार्थ ये वचन उन के सुनकर भी, प्रारम्भ किया हुआ कर्म नहीं छोड़ना चाहिये यों विचार कर आप वैसे ही बैठे रहे, और प्रजाओं के भ्रम को दूर कर दिया जिसका वर्णन 'निशम्य' श्लोक से करते है ।

श्लोक—श्रीशुक उवाच-**निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ।**
प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥९॥

श्लोकार्थ—श्री शुकदेवजी कहते हैं कि कमल नेत्र भगवान् बालकों जैसे प्रजा के वचन सुनकर हँसे और उनका भ्रम मिटाने के लिए कहने लगे कि यह सत्राजित है, जो मणि से प्रकाशित हो रहा है, सूर्य देव नहीं है ॥९॥

सुबोधिनी—बालानां अज्ञानां वचनम् । ते हि स्वोत्कर्षमेव विचारयन्ति । नतु निमित्तम् । तथैतेऽपि स्वोत्कर्षत्वेन मदुत्कर्षमेव भावयन्ति । ततो यं कञ्चन समागच्छन्तं महत्त्वेन मत्सम्बन्धित्वेन च कल्पयन्ति । तस्मात् स्वोत्कर्षपरान् अज्ञान् दृष्ट्वा प्रहस्य दृष्ट्यैव तेभ्यः सुखं दत्तवानित्याह **अम्बुजलोचन** इति । असौ देवरूपो रविर्न भवति, किन्तु रवेस्तेजो । रविभक्तश्चायं भवति, तेन देवपदं संगच्छते, किन्तु सत्राजिदयम् । कथमेवं जात इति चेत्, तत्राह **मणिना ज्वलन्निति** ॥९॥

व्याख्यार्थ—बाल शब्द यहां अज्ञों[1] के लिये दिया है अर्थात् भगवान् अज्ञों के वचन सुनकर हँसने लगे, क्योंकि ये अपनी बड़ाई का ही विचार करते हैं किन्तु कारण का विचार नहीं करते है, वैसे ये भी अपने उत्कर्ष से मेरे उत्कर्ष की ही भावना करते है, वा मेरा उत्कर्ष ही बटाते है इस कारण से जो कोई आता है, उसको मेरे सम्बन्धित्व के कारण महान् समझते हैं, और भगवान् कमल नेत्र हैं जिससे इन मूर्खों को अपने उत्कर्ष के परायण देख, हँस कर, दृष्टि से ही उनको सुख देने

१—नादानों, अनजानों

लगे, एवं कहने लगे कि यह देवरूप सूर्य नही है किन्तु सूर्य का तेज है, यह जो आ रहा है वह सूर्य का भक्त सत्राजित है, भक्त होने के कारण देव कहा गया है, वह ऐसे कैसे हो गया ? इस पर कहते हैं कि मणि को कण्ठ में बान्धा है इसलिये ऐसा प्रकाशित हो रहा है ॥९॥

आभास—मणिना तस्य भोगमुक्त्वा अर्थसम्पत्तिमाह **सत्राजित्स्वगृहमिति** ।

आभासार्थ—मणि से प्राप्त (भोग) कह कर 'सत्राजित्स्वगृहं' श्लोक से अर्थ की सम्पत्ति कहते हैं।

श्लोक—सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् ।
प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैन्यवेशयत् ॥१०॥

श्लोकार्थ—सत्राजित ने अपने घर में उत्सवार्थ माङ्गलिक कराके प्रवेश किया, अनन्तर देव-मन्दिर में ब्राह्मणों द्वारा मणि की स्थापना कराई ॥१०॥

सुबोधिनी—भगवत्कृपया पूर्वमेव श्रीमत्कृतानि कौतुकानि मङ्गलानि च यत्र । अनेन धर्मकामौ निरूपितौ। एवं स्वतःसिद्धत्रिवर्गं गृहं प्रविश्य तत्र भक्त्यतिशयात् देवसदने देवपूजागृहे दैत्यानां प्रवेशाभावाय विप्रैः सह मन्त्रपूर्वकं मणिं न्यवेशयत् । नितरां स्थापितवान् ॥१०॥

व्याख्यार्थ– भगवान् की कृपा से, पहले ही मांगलिक कार्य हुवे हैं, जिससे धर्म और काम की सिद्धि का होना निरूपण किया, इस प्रकार जिस घर में धर्म अर्थ और काम तीन कार्य सिद्ध हुवे हैं वैसे घर में प्रवेश कर वहां देवों के पूजास्थान में जहां दैत्य प्रवेश नहीं कर सकते है वहां ब्राह्मणों के साथ जाकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक मणि की स्थापना की ॥१०॥

आभास—स्थापितस्य फलमाह **दिने दिने** इति ।

आभासार्थ– अब 'दिने दिने' श्लोक में मणि के स्थापन करने से जो फल हुआ उसका वर्णन करते है।

श्लोक—दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ।
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥११॥

श्लोकार्थ—यह मणि प्रति दिन आठ भार अर्थात् ४० मन सुवर्ण देती थी, जहाँ मणि है, वहाँ अकाल, महामारी, अकल्याण, सर्प, आधि, व्याधि और दूसरे अशुभ भी नहीं होते तथा मायावी लोगों का रहना भी नहीं हो सकता।

सुबोधिनी—पञ्चमणमात्रं भारः, चत्वारिंशद्भरणानि मण उच्यते मानविशेषः। ते चाष्टौ चत्वारिंशन्मणान् सुवर्णस्य प्रत्यहं सृजति। सविता हि तस्य मूलम्। अतोऽयमपि प्रसविता। प्रभो इति सम्बोधनं तदाकाङ्क्षाभावाय। न केवलमिष्टसाधकत्वम्, किन्त्वनिष्टनिवारकत्वमपीत्याह दुर्भिक्षेति। अनावृष्टिकृतं दुर्भिक्षम्। मारी शीतलादिदेवाधिष्ठितव्याधिमरणम्। अरिष्टान्यन्यानि आधिव्याधिहेतुभूतानि। आधिव्याधयश्च। अशुभाः स्वप्नादयोऽपि। मायिनो राक्षसाः पूतनादयः। यत्रायमभ्यर्चितो मणिस्तिष्ठति, तत्र नैते भवन्तीति मणेर्दृष्टादृष्टसामर्थ्यं निरूपितम् ॥११॥

व्याख्यार्थ—चालीस सेर का मन होता है, पांच मन का एक भार वजन होता है, वे आठ भार प्रतिदिन मणि देती थी अर्थात् मणि हरेक दिन ४० मन सोना देती थी, मणि यों कैसे कर सकती ? इस शंका का समाधान आचार्य श्री करते हैं, कि यह मणि सूर्य से उत्पन्न होने से, इसकी जड़ सूर्य है अतः जैसे सूर्य पैदा कर सकता है वैसे ही यह भी पैदा कर सकती है, भगवान् को 'प्रभु' सम्बोधन देकर यह बताया, कि आप सर्व समर्थ हो आपको ऐसे मणि की इच्छा हो नहीं सकती है। यह मणि केवल इच्छित पदार्थ ही नहीं देती है, किन्तु अनिष्टों का भी निवारण करती है, जैसे कि अनावृष्टि से दुर्भिक्ष होता है उसके निवारण के लिये समयानुसार उचित वर्षा करती है, शीतला आदि देव जिन रोगों के अधिष्टाता हैं उन रोगों से जो मृत्यु आदि होती है उन रोग मृत्यु को होने नहीं देती है, आधि व्याधि के हेतु जो अरिष्ट है उनको नाश करती है, अशुभ स्वप्न आदि तथा पूतना आदि राक्षसों का यहां आना भी नहीं होता है, जहां यह मणि पूजी जाती है वहां ऊपर कहे हुए अनिष्ट होते ही नहीं है यों मणि के दृष्ट तथा अदृष्ट सामर्थ्य का वर्णन किया है ॥११॥

आभास—अयोग्ये महान् धर्मो न युक्त इति विचार्य भगवान् अनेन मणिना सत्राजितो नाशो भविष्यतीति, स्वपुरे च नाशो न युक्त इति, देवान्तराणामत्र सामर्थ्याभावात् तत्प्रसादोऽपि व्यर्थ इति, तस्य लोकद्वयेष्टसिद्ध्यर्थं यावद्द्रव्यं तत उत्पद्यते, तावद्ग्रामादिद्वारा तस्मै दापयित्वा, उग्रसेनाय मणिं दापयितुं सत्राजितं प्रति किञ्चिदुक्तवानित्याह **स याचित** इति।

आभासार्थ—जो योग्य न हो उसमें बड़ा धर्म, वा वस्तु का होना योग्य नहीं है, भगवान् ने विचारा कि यह सत्राजित इस मणि के योग्य नहीं है, अतः इस मणि के कारण इसका नाश होगा, अपने नगर में इसका नाश हो यह भी उचित नहीं है, अन्य देवका यहां सामर्थ्य चल नहीं सकता है, उसकी कृपा भी व्यर्थ है, इसलिये इसका दोनों लोकों में हित सिद्ध हो, तदर्थ जितना द्रव्य इससे होता है, उतना ग्राम आदि द्वारा इसको दिला कर, यह मणि उग्रसेन को देने के लिये भगवान् सत्राजित को कुछ 'स याचित' श्लोक से कहने लगे।

श्लोक—स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा।
नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयत् ॥१२॥

श्लोकार्थ—भगवान् ने कुछ समय के लिए मणि को यदुराज उग्रसेन को देने के

वास्ते सत्राजित से मणि माँगो, किन्तु पैसे के लोभी उसने यह मणि नहीं दी और किसी तरह भी भगवान् की याचना का भङ्ग हो, वैसा विचार करने लगा ॥१२॥

सुबोधिनी - क्षापीति । कियत्कालं प्रयच्छ । यावता मृत्युरपगच्छति ततः स्वयमेव ग्राह्यमिति भगवदभिप्रायो बोधितः । ननु तस्यैव मृत्युर्भविष्यतीत्याशङ्क्याह **यदुराजायेति** । **शौरिणेति** सामर्थ्यं दापने निरूपितम् । लौकिकपक्षपातश्च । तथापि न दत्तवानित्याह **नैवार्थकामुक** इति । स ह्यर्थमेव कामयते सिद्धम्, न तु मृत्युनिराकरणमपि, अतो न प्रादात् । यथैवायं न याचते, तथोपायं च विचारितवान् । सूर्यो वक्तव्यः, तद्द्वारा उपद्रवश्च कारणीयः, ततो न याचिष्यतीति याच्ञाभङ्गं तर्कितवान् ॥१२॥

व्याख्यार्थ—कुछ समय के लिये, यह मणि उग्रसेन जो यादवों का राजा है उस को दे, जब तक तुम्हारा मृत्युकाल टल जावे पश्चात् स्वयं ही ले लेना इस प्रकार भगवान् ने अपना अभिप्राय बताया, यह शंका नहीं करना कि उसकी ही मृत्यु होगी क्योंकि वह शूरकुल में उत्पन्न होने तथा यादवों का राजा होने से उनमें सामर्थ्य है जिससे मणि के द्वारा उनकी मृत्यु न हो सकेगी, अथवा लौकिक पक्षपात के कारण भी भगवान् ने यों कहा है, भगवान् की ऐसी इच्छा होने पर भी, मणि नहीं दी । क्योंकि अर्थ ही सिद्ध करना चाहता है, मृत्यु को टालना नहीं चाहता है । मणि न देने के ये ही कारण हैं, सत्राजित् उस उपाय का विचार करने लगा, जिससे भगवान् मणि की याचना करे नहीं, सूर्य को कहा जाय और उसके द्वारा उपद्रव कराये जावें, यों होने से मांगेंगे नहीं, इस प्रकार याचना भंग कराने का विचार करने लगा ॥१२॥

आभास-- एवं दोषद्वयं तस्य निरूपितम् । आज्ञोल्लङ्घनमपकारचिन्तनं चेति । तत्र स्वस्यैवापकारो जातः । आज्ञाभङ्गफलं मृत्युरपि जात इत्यध्यायद्वयेन निरूप्यते । एतादृशोऽपि मणिः भगवद्भावरहितः अनर्थपर्यवसायी जात इति निरूपयन् भगवदाज्ञोल्लङ्घनात् तदीयानां बुद्धिरेव दुष्टा जातेति, पूज्यमपि मणिं सत्राजिन्मात्रपरिधेयं च, भक्तस्यैव भगवद्धर्मा उपकारिण इति सामान्यं तं मणिं ज्ञात्वा प्रसेनोऽपि तत्प्रतिष्ठार्थं तद्भ्राता कण्ठे उन्मुच्य गत वानित्याह **तमेकदेति** ।

आभासार्थ – इस प्रकार उसके दो दोषों का निरूपण किया १-आज्ञा का उल्लंघन और बुराई हो, ऐसा विचार कर, वहां उसकी ही बुराई हुई, आज्ञा भंग का फल मृत्यु भी हुआ, जिसका दो अध्यायों में निरूपण किया जाता है, यद्यपि मणि, धन सम्पत्ति आदि देने वाली, रोगादि नाशक है, तो भी भगवद्भाव रहित होने से, अनर्थ फल देने वाली हुई । भगवान् की आज्ञा के उल्लंघन से तदीयों की बुद्धि ही दूषित हो गई, पूज्य ने भी मणि केवल सत्राजित के ही धारण करने के लिये दी थी, भगवान् के धर्म, भक्त का ही हित करते हैं, मणि को सामान्य मणि समझ कर उसका भ्राता प्रसेन भी उसकी प्रतिष्ठा के लिये कण्ठ में डाल कर वन में गया, जिसका वर्णन "तमेकदा मणि" श्लोक में करते हैं ।

श्लोक—तस्यैकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥१३॥

श्लोकार्थ—एक दिन सत्राजित का छोटा भाई प्रसेन बड़ी प्रकाशमान उस मणि को कण्ठ में बाँध घोड़े पर सवार होकर शिकार करने के लिए वन में गया ॥१३॥

सुबोधिनी कण्ठे मणिं प्रतिमुच्य एतत्प्रभया मृगा अन्धा भविष्यन्ति, ततो धर्तव्या इति, महाप्रभं सूर्यवत्प्रकाशमानम्, प्रसेनः प्रकृष्टसेनायुक्तोऽपि एकाकी हयमारुह्य मृगयां कर्तुं व्यचरत्। मृगा यान्त्यस्यामिति मृगनाशिका राजलीला मृगया, तामुद्दिश्य वने व्यचरत् ॥१३॥

व्याख्यार्थ - प्रसेन ने कण्ठ में मणि इसलिये धारण की थी कि इसके तेज से मृग अन्धे हो जायेंगे, तो उनको पकड़ने में सुगमता होगी, यद्यपि प्रसेन के पास बहुत सेना थी, तो भी अकेला ही घोड़े पर चढकर शिकार खेलने के लिये वन में फिरने लगा, शिकार, वह राजलीला है जिसमें मृगनाश किये जाते हैं अर्थात् जिस लीला में मृग नाश के मुख में जाते हैं, इसलिये इसको संस्कृत में 'मृगया' कहते हैं ॥१३॥

आभास—महाप्रभत्वात् असहिष्णुः सिंहः तं हत्वा मणिं नीतवानित्याह **प्रसेनमिति** ।

आभासार्थ—उसकी महती प्रभा को न सहकर सिंह ने उसको मारकर मणि लेली यह चरित्र "प्रसेनं' श्लोक में कहते है ।

श्लोक—प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ।
गिरिं विशञ्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥१४॥

श्लोकार्थ—एक सिंह वहाँ वन में घोड़े समेत प्रसेन को मारकर मणि ले पर्वत की गुफा में जाता था, तो मणि को चाहने वाले जाम्बवान् ने उसको मार डाला ॥१४॥

सुबोधिनी – अलौकिकेनोपायेन न मृगा हन्तव्याः, भगवांस्तेषु नालौकिकं दत्तवानिति, मृगयैव तदर्थं निर्मिता । तेषां वधं मणिना चिन्तयन् तेनैव स्वमृत्युं प्राप्तवान् । स मणिर्देवरूप इति क्रुद्धो मणिर्यत्रैव स्थितः, तमेव घातयतीति परम्परया बहूनां वध उच्यते । हयसहितं प्रसेनं हत्वा मणिः केनचिद्गृहीतः । सोऽपि निकृष्टस्थाने मणिं नयन् गिरिं विविक्षन् कन्दरां प्रविशन् जाम्बवता निहतः । ननु महान् सः, किमिति सिंहो हतवान् तत्राह **मणिमिच्छतेति** । अहतः सिंहो मणिं न मुञ्चतीति ॥१४॥

व्याख्यार्थ—मृग अर्थात् सिंह आदि पशु अलौकिक उपाय से मारे नहीं जाते का ण कि भगवान

ने उनको मार डालने की अलौकिक बुद्धि नहीं दी है, उनको मारने का उपाय शिकार ही बनाया है उनका वध मणि से होना ही विचारा हुआ था, उससे ही मृत्यु को प्राप्त हुआ, वह मणि साधारण पत्थर की मणि नहीं थी, किन्तु देव रूप मणि थी, अतः क्रुद्ध हुई मणि जिसके पास जाती है उसका ही वध करवाती हैं, यों परम्परा से बहुतों का वध कहा जा सकता है; घोड़े समेत प्रसेन को मार कर मणि सिंह ने ग्रहण की, वह भी अधम स्थान, पर्वत की गुफा में प्रविष्ट होते ही, जाम्बवान् ने उसे मार डाला, वह सिंह महान् है, उसको क्यों मारा ? इसके उत्तर में कहते हैं कि 'मणि इच्छताः' जाम्बवान् को मणि लेने की इच्छा थी इसलिये उसने सिंह को मारा यदि मारते नहीं तो जीवित सिंह मणि को छोड़ता नहीं, इसलिये मारने के सिवाय अन्य कोई उपाय मणि लेने का नहीं था ॥१४॥

आभास—तस्य मणेः प्रयोजनमाह **सोऽपि चक्र** इति ।

आभासार्थ—"सोऽपि चक्रे" श्लोक में उस मणि के लेने का प्रयोजन बताते हैं ।

श्लोक—**सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनक बिले ।**
अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥१५॥

श्लोकार्थ—उसने भी मणि को लेकर बिल में अपने कुमार का खिलौना बना दिया, वहाँ प्रसेन का भ्राता सत्राजित अपने भ्राता को न देखकर शोक करने लगा ॥१५॥

सुबोधिनी—बिले स्वस्थ नविवरे कुमारस्यातिबालकस्य (स्थाने) क्रीडनकं क्रीडासाधनं चक्रे । एतावदेकेनैव दिनेन निर्वृत्तम् । ततो भ्रातुरन्वेषणार्थं सत्राजिता मनुष्याः प्रस्थापितः । ततो न क्वाप्युपलब्धः । ततो भ्रातृस्नेहात् भ्रातरमपश्यन् सत्राजित्पर्यतप्यत । मणिरपि गतो, भ्रातापि गत इति ॥१५॥

व्याख्यार्थ—जाम्बवान् का छोटा बालक जिस स्थान पर रहता था, उस अपने स्थान के बिल में, मणि को उसने बालक का खिलौना बनाया, इससे यह समझा जाता है, कि यह कार्य एक ही दिन में पूरा हो गया, पश्चात् सत्राजित ने भ्राता की खोज करने के लिये मनुष्य भेजे, उसका कहीं भी पता न लगा, उससे भ्रातृस्नेह के कारण भ्राता को न देखने से, सत्राजित शोकातुर होने लगा, मणि भी गई और भ्राता भी गया इसलिये सन्तप्त हुआ ।१५॥

आभास—ततः किं जातमिति विचारे भ्रातुरिवास्यापि दुर्बुद्धिरुत्पन्नेत्याह **प्रायः कृष्णेनेति** ।

आभासार्थ—इसके अनन्तर, भ्राता की तरह इसकी बुद्धि भी दुर्बुद्धि हो गई जिसका वर्णन 'प्रायः' श्लोक में करते हैं ।

श्लोक—**प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ।**
भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपज्जनः ॥१६॥

श्लोकार्थ—गले में मणि बाँध वन में गए हुए मेरे भाई को बहुतकर कृष्ण ने मार डाला, यह सुनकर नगर के लोग आपस में कहने लगे कि सत्राजित के भाई को मार कर कृष्ण मणि ले आए हैं ॥१६॥

सुबोधिनी—अयमपि गतः । भगवान् स्वतोऽन्येन वा स्वयमपि मृगयां गतो मारितवानिति । **प्राय** इत्युत्कटा कोटिः । कृष्ण एव समर्थो मणिगुणान् दूरीकर्तुम् । हेतुश्चाप्यस्ति । मणिः पूर्वं याचित इति, वने च मारणे न कोऽपि ज्ञास्यतीति । एवं निश्चित्य भगवति क्लिष्टमारोपितवान् । ननु केनापि नोच्यते, कथं त्वं कल्पयसीत्याशङ्क्याह **भ्राता ममेति** । मम तु प्रिय इत्यहं ब्रवीमि, अन्यः किमर्थं वक्ष्यतीति भावः । तद्गृहे उक्तं भार्यादिस्थाने, पश्चात्कर्णे कर्णे समागतमजपत् । मन्त्रवत् शनैः भगवत्कीर्तिमुक्तवान् । यतो जनः, नह्यल्पेन दोषेण जन्ममरणादिकं प्राप्नोति ॥१६॥

व्याख्यार्थ—सत्राजित ने कहा कि जैसे मेरा भाई वन में गया वैसे यह भी गए । भगवान् स्वतः गये अथवा दूसरों को भी ले गये, वहां जाकर मेरे भाई को स्वयं ने मारा अथवा दूसरों से मरवाया, बहुत कर तो स्वयं ने ही मारा है, यह विशेष कोटि है, क्योंकि कृष्ण ही समर्थ हैं और मणि के गुणों को जानते हैं अथवा उनको दूर भी कर सकते हैं, यों करने में कारण भी हैं, जो पहले मुझ से उग्रसेन के लिये मणि मांगी थी मैंने नहीं दी थी, वन में जाकर मारने से कोई जान न सकेगा, इस प्रकार विचार कर निश्चय किया कि कृष्ण ने ही मारा है और यह दोष कृष्ण पर आरोप किया । यह तो केवल तूं ही कहता है दूसरा कोई भी नहीं कहता । तुम यह कल्पना कैसे करते हो ? इसके उत्तर में कहता है, कि मेरा भाई है, जिससे मुझे प्यारा है, इसलिये मैं कहता हूँ दूसरे को क्या प्रयोजन है जो कहे । यह समस्त वर्णन अपने अन्तःपुर में किया, पश्चात् प्रत्येक कान कान में कहने लगा । मन्त्र की भांति धीरे धीरे भगवत्कीर्ति को कहने लगे क्योंकि मनुष्य हैं वह थोड़े दोष से जन्म मरण आदि को प्राप्त नहीं होता है ॥१६॥

आभास—पूर्वं भगवान् विदितवृत्तान्तोऽपि लोकन्यायेनैव व्यवहरन् स्वयमपि श्रुत्वा आप्तमुखात् तत्प्रतीकारार्थं यत्नं कृतवानित्याह **भगवानिति** ।

आभासार्थ—यद्यपि भगवान् ने पहले ही सर्व वृतान्त जान लिया था, तो भी, लौकिक व्यवहार दिखाने से लिये मनुष्यों के मुख से जब स्वयं ने सुना, तब उसके प्रतिकार के लिये यत्न करने लगे, जिसका वर्णन "भगवांस्तदु" श्लोक में करते हैं ।

श्लोक—**भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनः ।**
मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥१७॥

श्लोकार्थ—भगवान् ने अपने को वह कलङ्क लगा सुनकर, उसको मिटाने के लिए अपने साथ कुछ नगर निवासियों को लेकर जहाँ से प्रसेन गया था, उस रास्ते से उसको ढूँढ़ने के लिए गए ॥१७॥

सुबोधिनी—तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा आप्तमुखात् अकस्माद्वा उपश्रुत्य। उपश्रुतिः सर्वानेव ज्ञापयति। ततस्तत्प्रतीकारार्थं प्रवृत्त इति वक्तुं निराकरणीयत्वे हेतुमाह **दुर्यशो लिप्तमिति**। दुर्यशस आलिप्तमालेपनं लेपवदुपर्यपि प्रतिभासनम्। **आत्मन** इति। यदि भगवान् न दूरीकुर्यात्, सर्वेषामात्मा स्वयमिति तद्दोषे कस्यापि मुक्तिर्न भवेत्। अतो युक्तमेव तन्निराकरणम्। तल्लोकन्यायेनैव कर्तव्यमिति प्रसेनपदवीं नागरैः पदमार्गाभिज्ञैः तद्गतमार्गमन्वपद्यत। तेनैव मार्गेण स्वयं नागरैः सह गतः। अन्यथा लोकाः कृत्रिमं जानीयात् ॥१७॥

व्याख्यार्थ—वह सत्य वृत्तान्त आप्त (सत्य जानने वाले व कहने वाले) पुरुषों से अथवा अचानक सुनकर, उपश्रुति सबको ही जनाती है, इस कारण से उसके प्रतीकार के लिए प्रवृत्त हुए, उसको मिटाने की क्या आवश्यकता थी? जिसका कारण कहते हैं कि अपयश से लिप्त हो जाने से अर्थात् वैसी निन्दा होने लगी, जो लेप की भाँति सर्वत्र भासमान होने लगी, सारांश यह है कि जहाँ-तहाँ प्रत्येक मनुष्य भगवान् की निन्दा करते हुए कहने लगे कि भगवान् प्रसेन को मारकर मणि ले आए हैं, अतः इस असत्य कलङ्क को मिटाने के लिए यदि भगवान् प्रयत्न न करते तो उस कलङ्क रूप दोष के कारण किसी की भी मुक्ति न हो सकती थी; क्योंकि सबकी आत्मा भगवान् ही है, भगवान् कलङ्क से दोषी हुए तो सब दोषी हुए, अतः उसका निराकरण करना योग्य ही है, वह निराकरण भी अलौकिक रीति से न कर, लौकिक प्रकार से ही करना चाहिए, इसलिए उन नागरिकों को साथ ले गए, जो पद-मार्ग को जानते थे, जिससे उसके जाने के मार्ग को पहचानकर वहाँ पहुँच गए, यों न करते तो लोक कृत्रिम (बनावटी) जानते ॥१७॥

आभास—**ततस्तं दृष्टवानित्याह हतं प्रसेनमिति**।

आभासार्थ—'हत प्रसेन' श्लोक से कहते हैं कि अनन्तर उसको जाकर मरा हुआ देखा।

श्लोक—**हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने।**
तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥१८॥

श्लोकार्थ—वन में प्रसेन और अश्व को सिंह से मरा हुआ देखा और उस सिंह को मनुष्यों ने पर्वत के ऊपर रीछ के हाथ से मरा हुआ देखा ॥१८॥

सुबोधिनी—केसरिनखानां चिह्नदर्शनात् केसरिणैव हतं ज्ञातवन्तः। ततो मणिरप्यस्मै देय इति, यादवः स्वगोत्रजो मारित इति पदाभिज्ञैरेव केसरिमार्गमन्वगमत्। तं चापि अद्रिपृष्ठे पर्वतोपरि निहतं ददृशुः सर्व एव जनाः। तत्रापि ऋक्षेण ऋक्षपदचिह्नैस्तज्ज्ञानम् ॥१८॥

व्याख्यार्थ - केसरी सिंह के नखों के चिन्ह प्रसेन के देह पर देख समझ लिया कि इसको सिंह ने मारा है, तब जान लिया कि मणि भी इसको मिली है, अपने गोत्र में उत्पन्न प्रसेन यादव मारा गया है, पागियों के साथ ही सिंह के रास्ते से पीछे गए तो वहाँ मनुष्यों ने पर्वत के ऊपर देखा कि इस सिंह को किसी रीछ ने मार डाला है; क्योंकि वहाँ रीछ के पैरों के चिन्ह देखने में आ रहे थे ॥१८॥

आभास— ऋक्षान्वेषणार्थं भगवान् प्रवृत्त इत्याह **ऋक्षराजबिलमिति** ।

आभासार्थ— 'ऋक्षराजबिलं' श्लोक से कहते हैं कि भगवान् रीछ को ढूँढ़ने में प्रवृत्त हुए ।

श्लोक — ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसावृतम् ।
एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥१९॥

श्लोकार्थ— रीछों के राजा की गुफा बड़ी भयंकर और अन्धकार से व्याप्त थी, इसलिए प्रजा को बाहिर ही खड़ी रख आप अकेले प्रविष्ट हुए ॥१९॥

सुबोधिनी— यद्यपि भगवान् भक्तार्थमेव तत्र प्रविष्टः, तथापि लोके मण्यर्थं कष्टमपि कृतवानिति ज्ञापयितुं तस्मिन्बिले प्रविष्टः । ननु ऋक्षः प्राकृतः पशुः, भगवांस्तत्र किमर्थं गत इत्याशङ्क्याह **राजेति** । ऋक्षाणां राजा महानेव भवति । तत्रान्यस्य प्रवेशाभावाय विशिनष्टि **भीममन्धेन तमसावृतमिति** । अन्तःकरणस्य इन्द्रियाणां च प्रवृत्त्यभावाय विशेषणद्वयम् । अन्धतमः कदापि सूर्यतेजोरहितम् । अनेन मणिनापि तत्र प्रकाशो न कृत इति सूचितम् । अतो भगवान् अन्यान् स्थापयित्वा दयावन्तमिवात्मानं ज्ञापयित्वा । साधारणत्वादसमर्थत्वादनियामकत्वाच्च ताभिर्भगवन्निवारणं न कृतमिति ज्ञापयितुं प्रजापदम् । साधारणास्तु ततो निवृत्ता इति ज्ञापयितुं प्रजानामेवावस्थापनमाह । प्रायश्चित्तमेकेनैव कर्तव्यमिति मर्यादां पालयन्निव भगवानेक एव प्रविष्टः । यादवा अपि भगवदिच्छया अकीर्त्यापि शङ्किता न सङ्गे गताः ॥१९॥

व्याख्यार्थ - यद्यपि भगवान् बिल में भक्त के लिए गये थे, तो भी, लोक में यह जताने के लिये, कि भगवान् ने मणि की प्राप्ति के लिए कष्ट भी किया है । रीछ प्राकृत पशु है, जिसके लिए भगवान् वहाँ क्यों गये? इस शंका का निवारण करते हैं कि वह साधारण पशु नहीं है, किन्तु रीछों का राजा है, राजा महान् ही होता है, दूसरे किसी को क्यों नही भेजा ? इसके उत्तर में कहा है कि वहाँ दूसरा कोई जा नहीं सकता था, कारण कि गाढ़ अन्धकार से वह बिल व्याप्त था, जिससे अतःकरण तथा इन्द्रियों को वहाँ प्रवृति नहीं हो सकती है, घोर अन्धकार है, कारण कि वहाँ कभी भी सूर्य का दर्शन नहीं होता है, जिससे सूर्य के प्रकाश से वह स्थान रहित है इस कारण से मणि ने भी वहाँ प्रकाश नहीं किया, यों सूचित किया, भगवान् अपनी दयालुता प्रकट करते हुए अन्यों को बाहर ही ठहरा कर स्वयं प्रविष्ठ हुए, बाहर ठहरने वालों के लिये "प्रजा" पद देकर यह सूचित किया है कि वह साधारण असमर्थ और अनियामक थी इसलिये भगवान् को ऐसे स्थान पर जाने से रोका नहीं । जो साधारण थे वे तो लौट गये, इसलिये प्रजा को बाहर ही ठहराने का कहा है, किसी दोष हो जाने पर समुदाय

में से प्रायश्चित एक ही करता है यह नियम है, इस नियम के पालनार्थ भगवान् एक ही प्रविष्ट हुए, यादव भी भगवान की इच्छा से अथवा अपकीर्ति से शंकित हो भगवान के साथ प्रविष्ट न हुए ॥ १९ ॥

आभास—तत्र प्रविष्टस्य मणिदर्शनमाह **तत्र दृष्ट्वेति** ।

आभासार्थ—"तत्र दृष्ट्वा" श्लोक से कहते हैं कि वहाँ प्रविष्ट हुए भगवान् ने मणि देखी—

श्लोक—**तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ।**
हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥२०॥

श्लोकार्थ—वहाँ बालक ने मणि को अपना खिलौना किया है, यह देख उसको लेने का विचार कर भगवान् बालक के पास खड़े हो गए ॥२०॥

सुबोधिनी—यद्यपि तत्र नागलोकमणयः अन्येऽपि दिव्याः सन्ति,ततः स्यमन्तकपरिज्ञानं कठिनम्, तथापि स्वत एवोत्तममिति लौकिकेनापि प्रकारेण ज्ञातुं शक्यमिति ज्ञापयितुं **मणिश्रेष्ठमि**त्युक्तम् । तथापि मणिः गुप्त एव स्थाने स्थाप्यत इति भगवान् लौकिकप्रकारेण कथं दृष्टवान्, तत्राह **बालक्रीडनकमिति** । बालस्य क्रीडार्थमुपरि निबद्धमित्यर्थः । पुराणान्तरे तु स्यमन्तकमणिज्ञापकं वाक्यमपि श्रुतवानित्युक्तम् । तत्र धात्री बालं लालयन्ती आह । 'सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक' इति । अतो लौकिकेनापि प्रकारेण ज्ञात्वा अपकीर्तिनिराकरणार्थमिदं हर्तव्यमिति स्वाभाविकं चैतस्य न भवतीति, उपयोगश्च तथा नास्तीति, बालप्रबोधो वर्णमात्रेणापि भवतीति, पूजाभावात् धनप्रसवो नास्तीति, सुवर्णेनाप्युपयोगाभाव इति, अक्लिष्टकर्मापि पामरा न प्रष्टव्या इति स्वयमेव हर्तुं कृतमतिर्जातः । ततो मत्यैव सर्वा सामग्री अक्लिष्टत्वाय सम्पादितेत्याह आदौ भगवान् अर्भकान्तिके तूष्णीं कियत्कालमवतस्थे, न तु गृहीत्वा ततो निर्गतः । चौर्यादिना जीवत् अपथप्रवृत्तः महानपि भक्तोपि विषयासङ्गात् प्राकृतो जातः । अतस्तत्सम्बन्धात् तदीया अपि प्राकृता एव जाताः ॥२०॥

व्याख्यार्थ—श्लोक में "मणि श्रेष्ठ" पद देने का भावार्थ प्रकट करते हुए आचार्य श्री आज्ञा करते हैं कि यद्यपि वहाँ नागलोक को दूसरी भी अनेक दिव्य मणियाँ थी जिससे स्यमन्तक मणि की पहचान कठिन थी तो भी यह स्वत ही उत्तम थी जिससे लौकिक प्रकार से भी यह पहचानी जा सकती थी इसलिये इसको "मणि श्रेष्ठ" कहा गया है. यों हैं, तो भी ऐसी मणि तो गुप्त स्थानों में रखी जाती है तो भगवान् ने लौकिक रीति से कैसे देख ली ? इसके उत्तर में कहा है, कि "बालक्रीडनक" बालकों के क्रीड़ा के लिये ऊपर बांध रखी थी, अन्य पुराणों में तो ऐसी कथा है कि जब भगवान् वहाँ पधारे तब धात्री बालक को लालन करती हुई कहती थी "सिंहः प्रसेनमवधीत्, सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः" सिंह ने प्रसेन को मारा. फिर जाम्बान् ने सिंह को मार डाला, हे सुन्दर कुमार ! तूं रो मत यह स्यमन्तक तेरी है, ये शब्द सुन कर, लौकिक प्रकार से भी जान लिया और अपकीर्ति को निराकरण करने के लिए यह मणि हरण

करनी चाहिये, ऐसा स्वभाव तो इनका नहीं हो सकता है, और उसका उपयोग भी करना नहीं है. बालक को तो शब्द मात्र से प्रसन्न किया जा सकता है, मणि से धन की प्राप्ति तब हो जब उसकी पूजा की जाए. पूजा के अभाव से धन भी उत्पन्न नहीं होता है सुवर्ण से भी उपभोग का अभाव है. आप अक्लिष्टकर्मा हैं इसलिये पामरों से पूछने की आवश्यकता नहीं थी, इसलिये स्वयं ही मणि के हरण का विचार करने लगे, यों विचार करने के बाद परिश्रम न हो इसलिये सर्व सामग्री तैयार करली. पहले भगवान् बालक के पास मौन धारण कर कितने समय खड़े रहे किन्तु वहाँ से मणि लेकर नहीं निकले, चोरी से जीवन बुरे मार्ग पर जाता है, जिससे महान् हो, चाहे भक्त हो, वह विषयों में आसक्त होने से प्राकृत हुवा, अतः उसके सम्बन्ध से तदीय भी प्राकृत हो गये ।। २० ।।

आभास—अतो भगवन्तं दृष्ट्वा सदबुद्धयभावात् विषयाभिनिवेशाच्च विचारमकृत्वापि आक्रोशं कृतवतीत्याह **तमपूर्वमिति** ।

आभासार्थ—भगवान् को देखकर, वह दाई जो बालक की रक्षा कर रही थी उसमें सद्बुद्धि न होने के कारण और इस काम में आग्र होने से बिना विचार आक्रोश[1] करने लगी, जिसका वर्णन "तमपूर्वं" श्लोक में करते है—

श्लोक—**तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ।**
तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान्बलिनां वरः ।।२१।।

श्लोकार्थ—दाई ने उस अपूर्व नर को देख डरे हुए के समान चिल्लाया, वह चिल्लाना सुनकर बलवानों में श्रेष्ठ, क्रोधित जाम्बवान् भगवान् के निकट आया ।।२१।।

सुबोधिनी—देवादीनामन्यतरश्चेद्वाक्स्तम्भनादिकमपि कुर्यादिति । तदभावात् भगवतो क्लिष्टकर्मत्वं ज्ञात्वा नरोऽयमिति ज्ञातवती । आकृतिवचनो वा नरशब्दः । स्वस्थस्याप्याक्रोशो भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थं पुत्रं वा मारयिष्यतीति बुद्धया जाम्बवानपि महानिति तथा भयाभावात् भीतवत् चुक्रोश । यतो धात्री बालकरक्षापरा । ततोऽन्तःकार्यान्तरव्यापृतोऽपि तद्वाक्यं श्रुत्वा समागत इत्याह **तच्छ्रुत्वेति** । मदायतनेऽपि मण्यर्थं कः समागत इति क्रोधः । **जाम्बवानिति** नाम्ना प्रसिद्धो रामायणे बुद्धिविशेषे, तादृशोऽप्यविचार्य समागतः । तत्र हेतुर्बलाभिमान इति आभप्रायेणाह **बलिनां वर** इति । बलिभिरपि वरणीय इत्यर्थः ।।२१।।

व्याख्यार्थ—देव आदि में से कोई एक होवे, तो वाणी का स्तम्भन भी करदे, किन्तु भगवान् ने ऐसा किया नहीं, भगवान् का क्लिष्ट कर्म जान कर समझने लगी कि यह कोई मनुष्य है, अथवा यह नर शब्द आकृति के कारण कहा गया है, सुखी भी कभी चिल्लाहट करता है यह चिल्लाना वैसा नहीं था, किन्तु यह आया हुआ, पुत्र को मारेगा, इस विचार से यद्यपि जाम्बवान् महान् होने से

१—चिल्लाने लगी

निर्भय था, तो भी डरे हुवे के समान चिल्लाने जगा, कारण कि दाई बालक की रक्षा कर रही थी, यद्यपि स्वयं भीतरी अन्य कार्यों में रुका हुआ था तो भी दाई का वाक्य सुनकर, भगवान् के पास आ गया, वाक्य सुनते ही इसको क्रोध उत्पन्न हुआ क्योंकि यह विचार होने लगा, मेरे घर में रखी हुई मणि को लेने के लिए यह कौन है ? जो मेरे घर के भीतर आ गया है, जाम्बवान् के लिये रामायण में प्रसिद्ध हैं, कि बड़ा बुद्धिमान है, वैसा बुद्धिमान होकर भी, बिना विचार किये आ गया, यों आने का कारण बल का अभिमान था, इसलिये श्लोक में 'बलिनांवर' बलवानों में श्रेष्ठ कहा है, बली भी इसका वरण करते हैं ।। २१ ।।

आभास—एतादृशोऽपि कालादिवशादज्ञो भूत्वा भगवता सह युद्धं कृतवानित्याह **स वा** इति ।

आभासार्थ—ऐसा समझदार होते हुए भी कालादि के वश हो जाने से अज्ञ बन गया जिससे भगवान् के साथ युद्ध करने लगा, जिसका वर्णन 'स वै भगवता' श्लोक में करते हैं—

श्लोक—स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ।
पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ।।२२।।

श्लोकार्थ— वह जाम्बवान् निश्चय से, उनके प्रभाव को न समझ प्राकृत मनुष्य मानकर, अपने स्वामी उन भगवान् से युद्ध करने लगा ।।२२।।

सुबोधिनी—स्वयमपि प्रसिद्धः, तथा कुर्वन् लोके अपकीर्तिमपि प्राप्स्यतीति सूचितम् । तत्रापि वै निश्चयेन । शारीरेण जीवस्याराध्यो भगवान् । तत्राप्यात्मनः स्वामिना स्वस्यैवोपास्यरूपेण । तत्कथमित्याकाङ्क्षायामाह **तेनेति** । रघुनाथेन । कृष्ण एव रघुनाथः, तामेव सर्वां सामग्रीं गृहीत्वा समागत इति । स एव लक्ष्मणो बलः । सैव सीता रुक्मिणी । ते वानरा यादवाः, सैवायोध्या द्वारका, सैव सरयूर्गोमतीति । तर्हि कथं युयुधे तत्राह **पुरुषमिति** । प्राकृतं पुरुषं मत्वा प्रकृत्यधिष्ठातारम् न तु पुरुषोत्तमम् । ननु महतः कथमेतादृशमज्ञानमिति चेत्, तत्राह **कुपितो नानुभाववि-दिति** । दृष्ट्वा क्रोधवशात् अलौकिकत्वं न ज्ञातवान् । पूर्वं तु कृतो गोवर्धन दरेनुभावो न श्रुतः सत्सङ्गाभावात् बिलेशयत्वाच्च । अतोऽनुभावानभिज्ञत्वात् कोपावेशाच्च स्वामित्वेनाज्ञात्वा युयुधे । अक्लिष्टकर्मा च भगवान् । अनुक्त्वैव स्वयं युद्धं कृतवान् । भगवत उत्तरार्धलीलायां प्रकृतिः कालादयश्चासहमाना जाताः । तेषां पीडार्थं, पुरुषं परित्यज्य सम्प्रविशति तत्त्वानि, यथा काठिन्यं जहति, तथा मुष्टिप्रहारैः सेवककृतं चलने पादाविव कोमलानि कृतानीत्येके । चिरकालं मल्लयुद्धाकाङ्क्षया तथा कृतमित्यन्ये । रामावतारे हि तस्मै वरो दत्तो रामेण 'त्वदाराधनां ग्रहीष्यामी'ति । पुनस्तेन विज्ञापनायां कृतायां बल मदीयं व्यर्थं जायत इति । ततो भगवान् बुद्धिमिदानीं प्रकटीकुरु, बलं पश्चात्प्रकटीकरिष्यसीत्याह । नहि कश्चिज्जीवस्त्वत्पराक्रमं सोढुं शक्त इति । अतस्तत्र स्थापितां ज्ञानशक्तिं पूर्ववतारे गृहीत्वा इदानीं बलशक्तिमपि गृह्णन् पूजां गृहीत्वा तं मुक्तं करिष्यतीति तथा भगवदुद्योगः ॥२२॥

व्याख्यार्थ—जाम्बवान् स्वयं प्रसिद्ध था, अतः इस प्रकार भगवान् से युद्ध करने से अपकीर्ति को प्राप्त होगा, यह सूचित किया, यह सूचना साधारण नहीं है, किन्तु निश्चयपूर्वक है, जीव को भगवान् की आराधना शरीर से करनी चाहिये, उसमें भी अपने स्वामी उपास्य रूप की तो करनी ही चाहिये 'तेन' पद से यह दिखाया है, जाम्बवान् का उपास्य जो रघुनाथ है, वे कृष्ण ही हैं अतः उसी सकल सामग्री को लेकर यहाँ आये हैं जैसे वही लक्ष्मण बलराम है, वही सीता रुक्मिणी है, वे बन्दर यादव हैं, वह ही अयोध्या अब द्वारकापुरी है वह सरयू गोमती है, जब यों है, तब जाम्बवान् अपने उपास्य से कैसे लड़े ? इस पर कहते हैं कि प्रकृति के अधिष्ठाता को प्राकृत समझा, न कि पुरुषोत्तम जाना। वह जाम्बवान् महान् बुद्धिमान है उसको ऐसा अज्ञान कैसे हुआ ? क्रोध ऐसी वस्तु है जो ज्ञानी को अज्ञानी बना देता है, यह भी क्रूर था, अतः क्रोध के कारण प्रभाव को न जान सका, अलौकिक की पहचान न हो सकी, भगवान् ने जो गोवर्धन धारण कर अपना प्रभाव दिखाया था, वह इसने न देखा और न सुना था. क्योंकि एक तो सत्संग का अभाव था, अर्थात् सत्संग नहीं किया था तथा दूसरा बिल में भी रहता था जिससे माहात्म्य जान न सका था अतः माहात्म्य का ज्ञान न होने से, कोप के आवेश से और यह मेरा स्वामी है इस अज्ञान से लड़ाई करने लगा। भगवान् तो अक्लिष्ट कर्मा हैं, अर्थात् भगवान् को किसी भी कार्य करने में परिश्रम तो होता हो नहीं है, इसलिये कुछ न कहकर ही स्वयं युद्ध करने लगे। भगवान् की उत्तरार्ध की लीला को प्रकृति[1] तथा काल[2] आदि[3] सहन न कर सके, उनकी[4] पीड़ा के लिए, जैसे पुरुष को छोड़ सत्ताईस तत्व कठिनता का त्याग करते हैं, वैसे ही सेवकों के किये हुवे मुष्टि प्रहारों से चलने में पैरों की तरह कोमल किये, यों कोई एक कहते हैं। दूसरे कहते हैं कि बहुत समय से मल्लयुद्ध लड़ने की चाहना थी इसलिये यों किया। रामावतार में श्री रामचन्द्रजी ने इसको वरदान दिया था, तेरी सेवा ग्रहण करूँगा तब जाम्बवान् ने फिर प्रार्थना की कि मेरा बल तो व्यर्थ ही चला जायेगा। तब भगवान् राम ने कहा, बुद्धि अब प्रकट कर, अर्थात् बुद्धि से सेवा अब कर, उसको अब स्वीकार करूँगा, शेष बल पीछे प्रकट करना, अर्थात् बल की सेवा की स्वीकृति कृष्णावतार में करूँगा, क्योंकि तेरा ऐसा उत्कृष्ट पराक्रम है, जो कोई भी जीव सहन न कर सकेगा, अतः उसमें स्थापित ज्ञान शक्ति को रामावतार में ग्रहण कर अब बल शक्ति द्वारा पूजा ग्रहण कर उसकी मुक्ति करेंगे इसलिये ही भगवान् का यह उद्यम है ॥ २२ ॥

आभास—ग्रहादिवशाज्जयो न जायत इति कदाचित्तस्य शङ्का स्यात्, अतस्तन्निराकरणार्थं सर्वेष्वेव नक्षत्रेषु युद्धं निरन्तरं कृतवानित्याह द्वन्द्वयुद्धमिति ।

आभासार्थ—ग्रह आदि के वश से जीत नहीं होती है, इसलिये किसी को शंका होती हो, तो

१—प्रकृति शब्द का तात्पर्य है लोक धर्म का अनुसरण करना।

२—सत्ताईस नक्षत्रों को यहाँ काल कहा है।

३—आदि पद से कर्म और स्वभाव समझने चाहिए।

४—भगवान् ने जो सेवक पर मुष्टि प्रहार किये, तत्वों के पीड़ा के लिए युद्ध किया है, जिसका कारण सत्ताईस तत्वों की कठिनता छुड़ाना है।

उसके मिटाने के लिए समस्त नक्षत्रों में निरन्तर युद्ध करने लगे, जिसका वर्णन "द्वन्द्वयुद्ध" श्लोक में कहते हैं—

श्लोक—द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ।
आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥२३॥

श्लोकार्थ—जीतने की इच्छा वाले उन दोनों को आयुध, पत्थर, वृक्ष, द्रुम और भुजाओं से भारी भयंकर द्वन्द्व लड़ाई वैसे होने लगी, जैसे क्रव्य (माँस) के लिए बाज पक्षियों में आपस में होती है ॥२३॥

सुबोधिनी—उभयोरेव युद्धं द्वन्द्वयुद्धं सम्यक् प्रकारेण, न तु नटवदभिनयमात्रेण । तुमुलमधिकम् । प्रहारे सर्वबलविनियोगस्तुमुलता । उभयोर्विजिगीषतरिति तथा करणे हेतुः । शीघ्रमेव प्रहारेण व्यथितः । युद्धं त्यजत्विति जेतुमिच्छा अज्ञानाज्जाम्बवतः । जित एव जानातीति ज्ञापनार्थं भगवतः । तत्र युद्धसाधनान्यनेकान्याह आयुधेति । आदौ नानाविधान्यायुधानि । महाशूरत्वात् भगवतेऽपि दत्वा युद्धं करोतीत्येके । यदेवायुधं जाम्बवान् गृह्णाति, तज्ज्ञातीयमेव भगवानाविर्भावयतीत्यपरे । यदेव प्रक्षिपति, तदेव गृहीत्वा तेन प्रहरतीति वस्तुस्थितिः । अश्मानस्तु सुलभाः,द्रुमाश्च । सर्वेष्वेव भग्नेषु पश्चाद्दोर्भिः । नन्वस्य युद्धस्य को विधिरिति चेत्, तत्र दृष्टान्तमाह क्रव्यार्थे श्येनयोरिवेति । क्रव्यस्थानीयः स्यमन्तको मणिः, श्येनो वै वयसां बलिष्ठो भवति । यावत्स्यमन्तकप्राप्तिः, तावद्युद्धमित्यर्थः अत्यावश्यकमाग्रहं च जनयतीति क्रव्यतुल्यता । क्रव्यमुत्कृष्टमपक्वं मांसं सर्वथा जीवनार्थमपेक्षितम्, तथा लोकापवादनिराकरणार्थं भगवतोऽपेक्षितम् । तस्यापि भास्वरं जयेन प्राप्तमिति मोहादपेक्षितम् । क्षुत्पीडा च श्येनजातीयस्य गोमायोश्च नास्तीति बहूनर्थान् तुल्यान् दृष्ट्वा श्येनौ दृष्टान्तीकृतौ ।२३।

व्याख्यार्थ—दोनों की लड़ाई अच्छे प्रकार से होने लगी। यह लड़ाई नरों की तरह दिखावा मात्र नहीं थी, किन्तु वास्तविक घोर युद्ध था। सारा बल जिस युद्ध में लगाया जावे, उसको तुमुल युद्ध कहा जाता है ऐसी भारी लड़ाई का कारण यह था, कि दोनों चाहते थे, कि हमारी जीत होनी चाहिये, किन्तु भगवान् के प्रहार से शीघ्र दुःखी हो गया, लड़ाई बन्द हो, ऐसी इच्छा जाम्बवान् को होने लगी। तो युद्ध क्यों किया? जीतने की इच्छा से किया। परन्तु वह इच्छा, अज्ञान से उत्पन्न हुई थी। भगवान् ने तो समझ लिया कि मैंने जीत लिया, मेरा सेवक ही मेरे स्वरूप को जान सकता है, अथवा यह भगवान् है यों जताने के लिए कहता है, कि मैंने अज्ञान से जीतने की इच्छा की थी। अब युद्ध बन्द होना चाहिये, भगवान् ने मुझे जीत लिया। उस युद्ध में युद्ध के साधन अनेक थे। पहले तो अनेक प्रकार के आयुध थे, कोई तो यों कहते हैं कि जाम्बवान् बड़ा योद्धा था, इसलिये उसके पास इतने बहुत आयुध थे जो भगवान् को भी स्वयं आयुध देता था और कहता था कि अब लड़ो, दूसरों का कहना है, कि नहीं जैसा शस्त्र जाम्बवान् लेता था वैसा शस्त्र भगवान् प्रकट करते। वास्तव में वस्तुस्थिति ऐसी होती थी, कि जो शस्त्र जाम्बवान् भगवान् पर फेंकता था, उसी को लेकर भगवान् प्रहार करते थे। पत्थर तथा पेड़ तो सुलभ मिल जाते थे, वे सब टूट जाते तब भुजाओं से युद्ध करते

थे। इस युद्ध करने की विधि क्या है ? जिसका उत्तर दृष्टान्त द्वारा दिया है, जैसे माँस के लिये बाज पक्षी लड़ते है, वे जब तक माँस अपने को न मिला है, तब तक लड़ते हैं वैसे ही यहाँ जब तक मणि की प्राप्ति न हो जाय, तब तक लड़ते रहना, कच्चा माँस बाज पक्षियों को जीवन के लिये अवश्य अपेक्षित है,वैसे ही भगवान् को अपना कलंक मिटाने के लिये मणि की आवश्यकता अपेक्षित है। कलंक मिटकर सत्यरूप शोभा तब बढ़ेगी, जब यह मणि विजय से प्राप्त की जायेगी। इस प्रकार के मोह के कारण ही भगवान् को मणि अपेक्षित है। बाज जाति और शृगाल को क्षुधा से पीड़ा नहीं होती है अथवा क्षुधा और पीड़ा नहीं होती है। इस प्रकार बहुत अर्थों की समानता देखकर इये नौ दृष्टांत दिया है ॥ २३ ॥

आभास—एवं युद्धस्य कालमाह **आसीत्तदष्टाविंशाहमिति** ।

आसाभार्थ—"आसीन्तदष्टा" श्लोक से युद्ध कितने दिन चला सो बताते हैं—

श्लोक—**आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ।**
वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्राममहर्निशम् ॥२४॥

श्लोकार्थ—वज्र के प्रहार से भी कठोर मुक्कों से विश्राम लिए बिना दिन-रात अठ्ठाईस दिन तक परस्पर दोनों लड़ते रहे ॥२४॥

सुबोधिनी—अष्टाविंशे दिवसे ज्ञानं जातमिति तदपि दिनं फलरूपं युद्धमध्ये गृहीतम्। इतरेतर-मुष्टिभिः वज्रनिष्पेषादपि परुषैस्तद्युद्धं मध्ये विश्रामरहितम्। अहर्निशमिति ऐहिकावश्यकका-लकृतोऽपि विश्रामो नास्तीति सूचयति। भगवां-स्तावत् प्रहारं करोति, यावत्स करोति, सोऽपि बलरूपो भवतीति वज्रनिष्पेषादपि तत्प्रहारः परुषः। अतस्तुल्यत्वात् न विरमणम्, नाप्येकस्य पराजयः। भक्तत्वाद्भगवतो न मारणीयः। भग-वांस्त्वशक्त एव। अत्र काचिद्विरुद्धा कथा। महा-मायोपस्थानस्याग्रे निरूपितत्वात् तेन विरोधादु-पेक्षणीया। कल्पान्तरीयेत्यन्ये समादधुः ततः कालकृतं तस्य बलमिति सप्तविंशात्मके काले अतीते। प्राकृतबलपक्षेऽपि अष्टाविंशतिप्रकारं तद्बलमिति ॥२४॥

व्याख्यार्थ—अठ्ठाईसवें दिन, जाम्बवान् को ज्ञान हुआ, कि यह तो मेरे उपास्य स्वरूप हैं, वह दिन भी फलरूप होने से, युद्ध में गिना गया है, वास्तव में उसी दिन लड़ाई नहीं हुई है, वज्र के प्रहार से भी कठोर घुँसों से जो इतने दिन लड़ाई बिना विश्राम के दिन रात चली, वह तुमुल भारी लड़ाई हुई, काल ने रात्रि विश्राम के लिये बनाई है, किन्तु वह कालकृत विश्राम भी न लेकर लड़ते रहे, जब तक वह प्रहार करे, उससे पहले भगवान् कर देते, वह भगवान् का प्रहार बलरूप हो जाने से वज्र गिरने से भी कठोर होता था, वे दोनों तुल्य होने से, विश्राम नहीं लेना चाहते थे, यों होते हुवे भी एक का भी पराजय न हो सका जिसका कारण यह था, कि जाम्बवान् भक्त था इसलिये भगवान् उसको मारना नहीं चाहते थे, भगवान् का तो अशक्य ही है, अतः दोनों वैसे ही रहे और लड़ते रहे। इस विषय में एक विरुद्ध कथा हरिवंश में कही गई है कि 'भगवान् ने जब जाम्बवान् के बिल में प्रवेश किया तब वसुदेव आदि लौट कर द्वारका आ गये वहाँ कहने लगे कि कृष्ण मर गये

हैं। यह कथा महामाया के उपस्थान से आगे कही गई है इससे यह विरुद्ध होने से उपेक्षा करने योग्य है दूसरे इस प्रकार समाधान करते हैं कि कथा दूसरे किसी कल्प की है, सप्तविंशात्मक काल पूरे होने पर उसका काल कृत बल भी पूरा हो गया, प्राकृत बल के पक्ष में भी अठ्ठाईस प्रकार का उसका बल था ॥ २४ ॥

आभास—यदेव पुरुषप्रकारः समागतः, तदैव तस्य विवेक उत्पन्न इत्याह **कृष्णमुष्टीति** ।

आभासार्थ - प्रकृति काल आदि का प्रकार गया और जब पुरुष प्रकार आया तब ही उसको विवेक आया जिसका वर्णन 'कृष्णमुष्टि" श्लोक में करते हैं—

श्लोक—कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः ।
क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥२५॥

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण के घूँसों के प्रहार से उसके अङ्गों के सब बन्धस्थल शिथिल हो गए और बल शक्ति क्षीण हो गई, शरीर पसीने से भर गया, तब जाम्बवान् अचम्भे में आ उनसे कहने लगा ॥२५॥

सुबोधिनी—तस्य क्षीणेऽपि बले भगवतो बलं न क्षीणमिति । पश्चादल्पप्रहारैरपि निष्पिष्टाङ्गः । अङ्गानां चोरुबन्धनानि यस्य । विशीर्णसर्वावयवो जात इत्यर्थः । हस्तपादादयो भग्नाः । ततः अशक्तः जिज्ञासायां प्रवृत्त इति वक्तुं बाह्याभ्यन्तराशक्तिमाह **क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्र** इति । अन्तःकरणे विवेकधैर्ये क्षीणे, गात्रेषु प्रस्वेदेन शरीरमपि क्षीणम्, निष्पीडितमिवाभूत् । ततो विस्मितो जातः । विचारे क्रियमाणे समागमनादिभिः प्राकृतधर्मैर्जीवत्वे ज्ञाते स्वसमानबलतैव कस्यापि नास्ति । ततोऽधिकबलः कथं जात इत्याश्चर्यम् । भगवत्त्वे वा कथमेवंरूपेणागत इति उभयत्र विरोधादतीव विस्मितो जातः ॥२५॥

व्याख्यार्थ – जाम्बवान् का बल क्षीण हो गया किन्तु भगवान् का बल क्षीण न हुआ, अनन्तर थोड़े भी प्रहार से उसके अंगों के बन्धन ढ़ीले पड़ गये जिससे सर्व अवयव शिथिल हुए, हाथ, पैर टूट गये, पश्चात् अशक्त हो यह कौन है ? इस प्रकार जानने की इच्छा की, बाहर तथा भीतर की शक्ति जाने से निबंल हो गया, जिससे समग्र शरीर पसीने से व्याप्त हो गया। विवेक-धैर्य सहित अन्तःकरण क्षीण हुआ, अङ्गों में पसीना आ जाने से शरीर भी कमजोर हो गया, वैसी स्थिति आ जाने से विशेष प्रकार से अचम्भे में पड़ गया विचार करने पर देखा कि इससे मिलाप आदि किया है तो यह प्राकृत धर्मों से जीव जाना जाता है, किन्तु कोई भी जीव मेरे समान भी बलवाला नहीं है, यह तो मुझसे भी अधिक बलवाला कैसे हुआ ? यह अचम्भा है, यदि भगवान् है तो इस प्राकृत रूप से कैसे आए ? दोनों परस्पर विरुद्ध देख बहुत ही अचम्भे में पड़ गया ॥२५॥

आभास - ततो विरोधपरिहारे विचार्यमाणे लीलयापि प्राकृतवच्चेष्टा भवतीति निश्चित्य बलस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वाच्च भगवानेवायमिति ज्ञात्वा स्वस्य पराजयः नातीव मनःपीडां करोतीति ज्ञापयन् भगवन्तं स्तौति जान इति त्रिभिः ।

आभासार्थ –पश्चात् विरोध कैसे मिटे ? इसका विचार करने पर ध्यान में आया कि भगवान् की लीला करने के समय प्रकृतों की भाँति चेष्टा[1] हो सकती है. यह निश्चय कर लिया; क्योंकि उन का विशेष बल तो प्रत्यक्ष देख लिया, अतः यह भगवान् ही है, यों जानकर इससे पराजय होना मन को विशेष पीड़ा नहीं करने वाली है, यों जताते हुए भगवान् की स्तुति 'जाने त्वां' से तीन श्लोकों द्वारा करता है ।

श्लोक —**जाने त्वां सर्व भूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।**
विष्णुं पुराण पुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ।।२६।।
त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ।
कालः कलयतामीशः परः आत्मा तथात्मनाम् ।।२७।।
यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षवर्त्मादि-
शत्क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः ।
सेतुः कृतः स्वयशसोज्ज्वलिता च लङ्का
रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ।।२८।।

श्लोकार्थ—मैं आपको जानता हूँ, आप सब प्राणियों के प्राण, ओज, सह और बल हैं तथा विष्णु, पुराण पुरुष, उद्भवकर्त्ता और सर्व के नियन्ता काल रूप भी हैं, आप विश्व की रचना करने वालों के भी सृजन करने वाले हैं, जो रचे हुए सत् पदार्थ हैं, वे भी आप ही हैं, नाश करने वालों के भी काल रूप आप हैं, आत्मा के परमात्मा भी आप हैं । जिनके स्वल्प ही उद्दीपित क्रोध भरे कटाक्षों के पात से समुद्र के नक्र और मगर जब क्षोभित हो गए, तब समुद्र ने मार्ग दिया, अनन्तर समुद्र में पुल बाँधी, अपने यश से लंका को प्रकाशित किया, बाणों से राक्षसों के सिर पृथ्वी पर गिराये, वे रामचन्द्र प्रभु आप हैं ।।२६-२८।।

कारिका—**राजसैः सात्त्विकैश्चैव तामसैस्तन्निभैर्गुणैः ।**
सम्पूर्णैः सहितो विष्णुर्भगवानेव नान्यथा ।।१।।

१- प्रयत्न या कार्य

कारिकार्थ—राजस, सात्त्विक और तामस; इन तीन सम्पूर्ण गुणों के प्रकाश से युक्त यह भगवान् विष्णु ही हैं दूसरा कोई नहीं है ॥१॥

सुबोधिनी—कथं निवृत्त इत्याकाङ्क्षायां ज्ञात्वा निवृत इत्याह **जान** इति। ज्ञानमार्गानुसारेणापि ज्ञानं सम्भवतीत्यत आह **त्वामिति**। त्वामहं जाने। तत्र प्रकारानाह **सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलमिति**। **प्राण** आसन्यः, तस्य कार्यमोजः इन्द्रियशक्तिः। **सहो**ऽन्तकरणस्य। बल शरीरस्य। एवं सर्वप्राणिषु बलात्मा कार्यकारणभेदेन विभक्तवीर्य आसन्यस्त्वमेव। एवं नरोत्तमत्वमुक्त्वा पुरुषोत्तमत्वमाह **विष्णुमिति**। विष्णुरधिकार्यपि भवतीति तावन्मात्रतां निराकर्तुं विशेषमाह **पुराणपुरुषमिति**। पुरुषोत्तमम्। किञ्च। तादृशोऽपि प्रभविष्णुः। लोकमुद्भावयति। प्रकर्षेण भावयति वा। किञ्च। **अधीश्वरं** सर्वनियन्तारं कालरूपम्। पूर्वं क्रियाशक्तिर्निरूपिता चतुर्धा रूपभेदेन। इदानीं ज्ञानशक्तिर्निरूप्यते चतुर्धा, ज्ञानं च चतुर्विधम्। नियामकमेकम्, इष्टसाधनतां ज्ञापयित्वा प्रवर्तकं द्वितीयम्, ततः फलदातृत्वेन स्थितं तृतीयम्, ततो निर्वाहकसर्वरूपं चतुर्थम्। तद्विष्णुपदेन प्रत्यवरोहक्रमेण अन्यैः पदैश्च निरूपितम् ॥२६॥

एवं पूर्णक्रियाज्ञानशक्तिमत्त्वेन भगवन्तं निरूप्य तस्य जगज्जन्मादिमोक्षान्तकार्याणि चत्वारि निरूपयति **त्वं होति**। श्रुतयः सम्मत्यर्थं गृहीताः। विश्वसृजां तत्त्वानामपि त्वं स्रष्टा। सृज्यानामपि घटादीनां सत्स्वरूपं भवानेव। अनेन स्थितिरुक्ता। कलयतां कालमहादेवयमादीनामपि त्वं काल उपसंहारकर्ता। एवं सृष्टिस्थितिप्रलयानुक्त्वा मोक्षदातृत्वमाह **परमात्मेति**। आत्मनां सर्वेषामेव जीवानां परमात्मा फलरूपः। सायुज्यस्थानमिति यावत्। तथात्मनां वा परमात्मत्वेन सेवमानानां परमात्मा मोक्षदाता। अथवा। भगवतः सर्वत्वं वक्तुं सदंशस्योत्पत्त्यादिजनकत्वेन स्वरूप भगवानित्युक्त्वा, चिदंशमपि भगवानेवात्मेति वदन्, आत्मत्वेनैवस्वरूपता सिद्धेति तन्नियामकान्तर्यामिरूपत्वेन भगवन्तं निरूपयति **परेति** ॥२७॥

एव मूलकार्यरूपे निरूप्य य एव रामो मम स्वामी, स एव भगवानिति वक्तुं रामावतारपौरुषमाह **यस्येषदिति**। ईषदुत्कलितः पुष्पप्रायः क्रोधः, तत्रापि ऊर्ध्वं कलिकामात्र जातः, सोऽपि मनस्येवेत्याह **कटाक्षमोक्षैरिति**। अल्पीयसि क्रोधे मनसि जाते दृष्टिस्तादृशी जाता। सापि न संपूर्णा, किन्तु कटाक्षरूपा, ते च पुनः दृष्ट्यवयवा. मोक्षरूपा इति ज्ञापयितुं कटाक्षाणां मोक्षा निरूपिताः। अल्पजीवाश्चेतनाः तैर्भीता भविष्यन्तीति किं वक्तव्यम्। ततः अब्धिरपि वर्त्म आदिशत्। मदुपरि मार्गं कृत्वा गच्छन्त्विवत्युक्तवान्। ननु देय एव मार्गः, कथमुपायमुपदिष्टवानित्याह **क्षुभितनक्रतिमिङ्गिल** इति। नक्राणां तिमिङ्गिलानां च क्षोभं दृष्ट्वा तथोक्तवानित्यर्थः। अब्धिश्च आपो धीयन्ते अस्मिन्निति तासां निरन्तरमुत्पत्तिर्बाधिता स्यात्। अतो मर्यादारक्षार्थमपि तथोक्तवान्। अप्स्वभावः भगवत्कृतः। तेनान्यथाकर्तुं न शक्यत इति मार्ग एव कर्तव्य इति भगवानेव प्रार्थितः। अन्तरिक्षेणापि गमनेन गत्वा मारयितुं शक्यम्, तथा सति राक्षसैस्तुल्यता भविष्यतीति अलौकिके कर्तव्ये प्रस्तराणामेव समुद्रे प्लवन निरूपितम्, न वानराणामिति भगवता सेतुः कृत इत्याह। क्रमेण चरित्रत्रयं निरूप्यते। सेतुबन्धो राजसः, दाहः सात्त्विकः, रक्षसां वधश्च शिष्ट इति। जलाग्न्यासन्यानां निमित्तत्वात् सत्त्वादिक्रमो वा। स्वयशसा लङ्का उज्ज्वलितेति। ऊर्ध्वं ज्वलिता ज्वालिता उज्ज्वलीकृता वा. अनेनैतत् ज्ञापितम्, रघुनाथेनैव लङ्का प्रकाशितेति। अन्यथा लङ्कां को जानीयात्। नह्यन्यानि राक्षसस्थानानि लोके प्रसिद्धानि। इषुभिः क्षतानि स्वयमेव भूमौ पेतुः। क्षतमात्रेणैव भगवत्सामर्थ्यादेव पतितानि ॥२८॥

व्याख्यार्थ—जाम्बवान् युद्ध से कैसे निवृत्त हुआ ? इसके उत्तर में कहा है कि प्रभु के स्वरूप को जब जान गया; तब निवृत्त हुआ, ज्ञान मार्ग के अनुसार भी ज्ञान होता है। अतः कहता है, मैं आपको जानता हूँ कि आप सकल प्राणियों के आसन्य प्राण हैं, उसका कार्य ओज अर्थात् इन्द्रियों की शक्ति भी आप हैं, अन्तः करण का बल और शरीर का बल भी आप हैं, इस प्रकार सर्व प्राणियों में बलात्मा,कार्य कारण से जिसका वीर्य बांटा हुआ है वह आसन्य आप ही हैं,इस तरह नरों में उत्तम कहकर अब कहता है कि पुरुषोत्तम भी आप है; क्योंकि पुराण पुरुष विष्णु हो, यों तो केवल विष्णु कहने से अधिकारी विष्णु समझा जाता, वैसा होते हुए भी लोक को प्रकट करने वाले तथा प्रकर्ष से भावित करने वाले होने से प्रभु विष्णु भी आप ही हैं, सबको नियम में रखने वाले कालरूप भी आप हैं। पहले रूप भेद से चार प्रकार की क्रिया शक्ति का निरूपण किया अब चार प्रकार से ज्ञान शक्ति निरूपण की जाती है, ज्ञान चार प्रकार का है, एक नियामक, इष्ट की साधनता जताकर प्रवृत्त करने वाला, दूसरा फलदातापन से स्थित तीसरा निर्वाह करने वाला सर्व रूप, चौथा है वह ज्ञान रूप अवरोह क्रम से और अन्य पदों से निरूपित है ॥ २६ ॥

इस प्रकार भगवान् के पूर्ण ज्ञान क्रिया शक्ति वाले स्वरूप का निरूपण कर, अब उनके जगत् के जन्म से लेकर मोक्ष पर्यन्त चारों कार्यों का निरूपण करता है, कि विश्व की रचना करने वाले तत्वों का सृष्टा आप ही हैं, बने हुए कार्यरूप घट आदि का सत् स्वरूप आप ही हैं, यों कहने से स्थिति बताई, नाश करने वाले काल महादेव और यम आदि के भी कालरूप आप ही हैं, इस प्रकार सृष्टि स्थिति प्रलय कर्त्ता स्वरूपों को कहकर, मोक्ष दाता होने से परमात्मा आप ही हैं, अर्थात् समस्त जीवों की परम आत्मा होने से फलरूप आप हैं। सारांश यह है कि सायुज्य स्थान आप हैं, आपकी परमात्मा रूप से सेवा करने वाले जीवों को मोक्ष देने वाले परम आत्मरूप आप मोक्ष दाता हैं अथवा सर्व भगवान् हैं यों कहने के लिये सदंश से उत्पत्ति आदि करने वाले स्वरूप होने से, भी आप भगवान् हैं, चिदंश जीव का आप भगवान् ही आत्मा हैं, यों कहते हुए आत्मापन से ही सबकी स्वरूपता सिद्ध हो गई उनका नियामक अन्तर्यामी रूप भी आप भगवान् हैं यों निरूपण करने के लिये कहता है, कि 'पर'' रूप आप ही हैं, अर्थात् आप से उत्तम वा 'पर' कोई नहीं हैं इस विषय में सम्मति के लिये श्रुतियां ली हैं ॥ २७ ॥

इस प्रकार मूल स्वरूप के कार्यों का रूप वर्णन कर, जो ही राम मेरा स्वामी वही आप है, यों कहने के लिये, रामावतार के पराक्रमों का वर्णन करता है। अल्प ही उभरा हुआ फूल सम क्रोध, वह भी बढा हुआ कली जैसा हो गया। वह भी मन में ही उत्पन्न हो रहा था, थोड़ा भी क्रोध मनमें उत्पन्न होता है, तो दृष्टि भी वैसी हो जाती है। अर्थात् दृष्टि बदल जाती है। जिससे यह ज्ञान होता है, कि इसको क्रोध उत्पन्न हुआ है श्री राम की दृष्टि पूर्ण क्रोध से युक्त न थी, अतः कटाक्ष रूप ही थी, फिर वे दृष्टि के अवयव मोक्ष रूप थे यों जताने के लिये कटाक्षों के मोक्ष का निरूपण किया है। अर्थात् राम ऐसी स्थिति में अपनी दृष्टि के कटाक्षों को समुद्र पर फेंका जिससे डर कर समुद्र ने ही जब मार्ग दे दिया, तो चेतन जीव उनसे डरे उसमें कहना ही क्या है ? समुद्र ने डर से, भगवान् रामजी को कहा, कि यह मार्ग है, मेरे ऊपर मार्ग बनाकर आप निःसंकोच हर्ष से पधारिये। समुद्र को जाने का मार्ग दे देना चाहिये था ? उपाय क्यों बताया ? जिसके उत्तर में कहा है, कि समुद्र ने सोचा कि यदि रास्ता दूंगा, तो मेरे भीतर जो नक्र मगर आदि भंयकर जीव हैं, वे उनको कष्ट देंगे। अतः

मार्ग बता दिया अथवा समुद्र को संस्कृत में "अब्धि" नाम भी दिया है, वह इस लिये दिया है, कि इसमें निरन्तर पानी पैदा होता ही रहता है, यदि वहाँ से रास्ता दिया जाता तो पानी की उत्पति में रुकावट हो जाती, अतः रास्ता न देकर ऊपर पुल बान्धने का उपाय बता दिया जिससे मर्यादा की भी रक्षा की गई इस प्रकार उत्पत्ति होने में जल का स्वभाव भगवान् ने बनाया है, इस तरह अन्य प्रकार से कर नहीं सकते, इसलिए भगवान् को ऊपर मार्ग बनाने की प्राथना की है, अन्तरिक्ष से भी जाकर मारा जा सकता था, इस प्रकार मारने से राक्षसों से समानता हो जाती, इसलित कुछ अलौकिक भी दिखाना इस विचार से पाषाणों को ही समुद्र में स्नान कराते तैराना योग्य ही है। यह निश्चय कर पत्थरों से पुल बनवाई यों निरूपण किया है। यह पुल वानरों ने नहीं किन्तु भगवान ने सिद्ध किया है, भगवान् ने तीन प्रकार मे चरित्र किया है। १-पुल बान्धना यह राजस चरित्र है। २-रावण की पुरी का वा रावण का दाह यह सात्विक चरित्र है, शेष राक्षसों का वध यह तामस चरित्र है, अथवा जलकार्य सत्व, अग्नि कार्य राजस आसन्य कार्य तामस है, इन कार्यों के निमित्त होने से तीन गुणों का क्रम है, श्री राम ने अपने यश से लंका प्रकाशित करदी वा जलाई इससे यह बताया कि रघुनाथ ने ही लंका को जगत में प्रसिद्ध किया नहीं तो लंका को कौन पहचानता था। जैसे अन्य राक्षस-स्थान, लोक में प्रसिद्ध नहीं वैसे वह भी नहीं होती, बाणों से क्षत हो राक्षसों के सिर स्वयं पृथ्वी पर गिर जाते, क्षत होते ही गिरने का कारण भगवान् का सामर्थ्य ही है ॥२८॥

आभास—एवं कृते स्तोत्रे भग्नसर्वाङ्गं यथापूर्वं कृत्वा भगवानुवाचेत्याह **इतीति**।

आभासार्थ—जाम्बवान् ने जब इस प्रकार स्तुति की तब भगवान् ने उसके टूटे हुवे अंगों को पहले जैसे सिद्ध कर दिये और उसको "इति" श्लोक से कहने लगे।

श्लोक—**इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः।**
व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥२९॥

श्लोकार्थ—हे महाराज! इस प्रकार जिस रीछों के राजा को विशेष ज्ञान हो गया है, उसको देवकी के पुत्र अच्युत भगवान् स्पष्ट कहने लगे ॥२९॥

सुबोधिनी—विशेषेण ज्ञातं विशेषज्ञानं यस्य, स्वभावतोऽपि महान्तमृक्षराजानम्, अच्युतः सर्वतः धर्मा अपि तस्य तथेति। एतत्प्रयोजनमुत्तरश्लोके वक्तव्यम्। तत्कृतपीडाभावाय वा। **व्याजहार** स्पष्टमुक्तवान्। निन्दितत्वात् कदाचित् व्याजेनापि वदेत्। अत एतदुक्तम्। **महाराजेति** संबोधनं सेवकापराधापरिगणनज्ञापनार्थम्। ननु कथं स्पष्टं वचनं कथं वा नाज्ञापितवानित्याह **भगवानिति**। सर्वसमर्थः। तादृशोऽपि देवकीसुतो भक्तकृपालुः। अतो युक्तमेवास्य स्पष्टवचनमिति भावः ॥२९॥

व्याख्यार्थ—जिसको विशेष ज्ञान हुआ है, और जो स्वभाव से भी महान् है, क्योंकि रीछों का राजा है, अतः उस महान् ऋक्षराज को स्पष्ट कहने लगे इस का प्रयोजन उत्तर श्लोक में कहा जावेगा अथवा उसको जो पीड़ा हुई उस पीड़ा को मिटा देने के लिये स्पष्ट कहने लगे, भगवान् जो स्पष्ट कहने

लगे,वह स्पष्ट कहना छल से भी हो सकता है;क्योंकि रीछ ने ऐसे कार्य किये हैं, जो निन्दा के योग्य है, इसका स्पष्टीकरण करते हुवे परीक्षित् को महाराज सम्बोधन देकर, इस शका का निवारण करते हैं कि सेवक के अपराधों की गणना नहीं की जाती है, आप राजा हैं इस बात को जानते हो हैं. स्पष्ट वचन क्यों कहे? आज्ञा क्यों न दी, इसका उत्तर देते हैं कि आप अच्युत एवं भगवान् हैं, अच्युत होनेसे सर्व समर्थ हैं अर्थात् आज्ञा करें वा स्पष्ट वचन कहें,उनकी जैसी इच्छा हो त्यों करें किंच देवकी के पुत्र हैं, वह स्वरूप तो भक्तों पर कृपा ही करता है, अतः इनका स्पष्ट वचन कहना उचित ही है ॥२९॥

आभास—वचनात्पूर्वमेव तस्य हितं च कृतवानित्याह **अभिमृश्येति** ।

आसाभार्थ—स्पष्ट कहने से पहले ही उसका कल्याण किया जिसका वर्णन' अभिमृश्य" श्लोक में करते हैं—

श्लोक—**अभिमृश्यारविन्दाक्ष. पाणिना शंकरेण तम् ।**
कृपया परया भक्तं मेघगम्भीरया गिरा ॥३०॥

श्लोकार्थ—कमल नेत्र भगवान् ने परम कृपा से उस भक्त पर अपना कल्याण करने वाला हाथ फेरा और मेघ की गरज के समान गम्भीर आनन्द देने वाली वाणी से कहने लगे ॥३०॥

सुबोधिनी—तस्याभिमर्शोऽपि सकृत् कृतो नित्यं तिष्ठति । सामान्यस्यैव वाभिमर्शः सुखकरो भवति तत्क्षणम्, किं वक्तव्यमानन्दमयस्य । तत्रापि यस्मिन् क्षणे स निष्पादितः, ततःप्रभृति तथैवानुवर्तत इति पूर्वावस्थां ततोऽप्यधिकां वा प्राप्तवान् । मानसीं व्यथां दूरीकर्तुमाह **अरविन्दाक्ष** इति । दृष्ट्यैव सर्वसुखदायी । **शंकरेण पाणिनेति** । तस्मिन्नतिशयाधानमप्युक्तम् । येनाग्रे सद्बुद्धिरप्युत्पद्यत इति । एवं कायेन मनसा च सान्त्वनं कृत्वा वचसापि सान्त्वनमाह **मेघगम्भीरयेति** । मेघा हि शब्दत एव भाविवृष्टिं सूचयन्तः चिन्तादिसर्वतापहारका भवन्ति । तथाप्यनुचितं कथमुक्तवानित्याशङ्क्याह **कृपया परयेति** । अनेन वा मानसं सान्त्वनम् । तमिति तथा स्तोत्रकर्तारं सान्त्वनोचितम् । त्रिविधसान्त्वनेऽपि हेतुर्भक्तमिति ॥३०॥

व्याख्यार्थ—उनका इस प्रकार एक बार भी हाथ फिराना नित्य रहता हैं । सामान्य मनुष्य भी यदि यों हाथ फिरावे तो वह भी उस समय ही देता है, तो आनन्द मय का हस्त फिरे, तो उससे जो सुख होगा, वह कहा नहीं जा सकता है, उसमें भी जिस क्षण में वह कल्याणकारी हस्त धरा उस समय से लेकर, वह सुख वैसा हो बढ़ता रहता है यों उसकी जो पहले अवस्था थी उससे भी अब विशेष सुन्दर अवस्था हो गई अर्थात् भगवात् का शीरर पर हाथ का स्पर्श होने से उसके टूटे हुए अग तो जुड़ गये किन्तु पूर्व से सुन्दर भी हो गये थे, न केवल अंग सुन्दर हुए किन्तु मन की व्यथा भी मिट गई क्योंकि भगवान् अरविंदाक्ष हैं, जैसे कमल से ताप मिटता है, वैसे भगवान् भी अपने कमल समान नेत्रों से भक्त के भीतरी व्यथा, यानि ताप को शान्त कर, सर्व प्रकार सुख देते हैं, कल्याण कर हस्त धरने से आश्रय भी दिया,जिससे आगे सद्बुद्धि भी उत्पन्न होती रहे। इस प्रकार काया तथा मन से सांत्वना

देकर अब वचन से भी सान्त्वना करते है। मेघ सम गम्भीर वाणी से सान्त्वना दी। जिसका भावार्थ यह है, कि जैसे मेघ गर्जना कर बताते हैं कि हम वर्षा करेंगे, सुभिक्ष होगा चिन्ता मत करो, यह गर्जना सुन प्रजा का मन का ताप मिट जाता है, वैसे ही भगवान् की वाणी से इसके ताप मिट गये। आज्ञा न कर स्पष्ट कहा, यह उचित सा नहीं था यों क्यों कहा ? इसका समाधान करने के लिये "परया कृपया" पद दिया हे जिसका आशय है, कि परम कृपा के कारण यों किया है। कृपा से जो किया जाता है, वह उचित ही है उसमें भी यहां परम कृपा है जिसके लिये क्या कहा जाय? इससे मानस सान्त्वना भी कहा समझा जा सकता है, 'तं' शब्द से यह बताया हैं कि जिसने स्तुति की है, उसकी सान्त्वना करना उचित ही है, तीन प्रकार की सान्त्वना कहने का कारण यह है कि वह "भक्त" है ॥ ३० ॥

आभास—वाक्यमाह मणिहेतोरिति।

आभासार्थ—"मणिहेतोः" श्लोक से वह स्पष्ट वाक्य कहते है –

श्लोक—मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम्।
मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥३१॥

श्लोकार्थ—हे रीछों के पति ! हम यहाँ बिल में मणि के लिए आए हैं; क्योंकि हम पर जो झूठा कलंक लगाया गया है, वह इस मणि से मिटाया जाएगा ॥३१॥

सुबोधिनी– अत्रागमने मणिरेव हेतुः। मणिनेतुमागताः। बहुवचनं पूर्वदृष्टसर्वसाहित्यं सूचयति। हेतुशब्दो वा निमित्तवाची। मणिनिमित्तं वयं समागता इत्यर्थः। **ऋक्षपत** इति। ज्ञात्वैवागमनं निरूपितम्। अन्यथा बिले समागमनं न स्यात्। मणेरपि प्रयोजनमाह **मिथ्याभिशापं प्रमृजन्निति**। एतद्विस्तरेणोक्तमिति लक्ष्यते। **मिथ्याभिशापः** अकृतापकीर्तिकीर्तनम्। लोकाः अत स्त्वविद इति। दृष्टिमेव मन्यन्त इति। अमुना मणिना अभिशापं प्रमृजन् इहागत इति सम्बन्धः। यद्यपि अग्रे मिथ्याभिशापापगमः, तथापि क्रिया प्रारब्धेति वर्तमानप्रयोग एव युक्तः। एकवचनं तु मिथ्याभिशाप एकस्यैवेति। **आत्मन** इत्यावश्यकता अन्यथा भक्तेद्वारो न सम्भवतीति भावः ॥३१॥

व्याख्यार्थ– यहाँ आने में मणि कारण है, मणि लेने के लिये हम यहाँ आये हैं बहुवचन इस लिये कहा, कि पहले अपने साथ जो सब आये थे उनकी सूचना दी, हेतु शब्द निमित्त वाची है, अर्थात् मणि के निमित्त हम आये हैं। हे ऋक्षपति! यहां मणि है यह जानकर ही हम यहाँ आये है, यह कारण नहीं होता तो हमारा इस बिल में आना नहीं होता, मणि लेने का भी प्रयोजन बताते हैं। यों भी आप न समझना कि मणि इतना सोना देती है इस लोभ से आये है वह प्रयोजन नहीं हैं, धन आदि की लालसा हमको बिलकुल नहीं है, किन्तु हम पर मणि ले जाने का झूठा कलंक लगाया गया है कि मैंने सत्राजित के भ्राता प्रसेन को मारकर मणि लेली है। इस नहीं किये हुवे कार्य का आरोपण झूठा कलंक लगाया गया है, यह अपकीर्ति सर्वत्र हो रही है लोक तो सत्य को जानते नही हैं, देखे हुवे

को प्रमाण मानते हैं, अतः यह मणि ले जा कर सारी कहानी सुना के अपना कलंक मिटाऊंगा, इस लिये ही हमारा आना हुआ है। यद्यपि आगे झूठी निन्दा मिट जाती, तो भी कार्य प्रारम्भ किया है इसलिये वर्तमान प्रयोग करना ही योग्य है। एक वचन इसलिये दिया है कि झूठी निन्दा एक की हुई है "आत्मनः" पद आवश्यक था क्योंकि मेरी ही निन्दा हो रही है, नहीं तो भक्त का उद्धार ही न हो सकता यों भी है ॥ ३१ ॥

आभास—एवं स्वाभिप्राये निरुक्ते वयं देयमिति विचार्य तावन्मात्रे दत्ते स्वस्य सेवकत्वं न सिध्यति, याचितं सर्वं एव प्रयच्छतीति स्वकन्यां च दत्तवानित्याह **इत्युक्त** इति।

आभासार्थ—इस प्रकार जब भगवान् ने अपना अभिप्राय स्पष्ट कह दिया तब जाम्बवान् ने विचार किया कि इनको मणि किस प्रकार दूँ ? केवल मणि देने से तो मेरा सेवकपन सिद्ध न होगा, अतः माँगने वाले को सब ही देना चाहिये यह निश्चय कर, मणि तथा अपनी कन्या भी दी, यह "इत्युक्त" श्लोक में शुकदेवजी वर्णन करते हैं—

श्लोक—श्रीशुक उवाच—**इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा।**
अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥३२॥

श्लोकार्थ—श्री शुकदेवजी ने कहा—भगवान् ने जब यों कहा, तब जाम्बवान् ने प्रसन्नता से अपनी जाम्बवती कन्या को लाकर कृष्ण के पास स्थापित की और पूजार्थ मणि भी दी ॥३२॥

सुबोधिनी—जाम्बवतः अपत्यं जाम्बवती, अनेन पालिता कन्या न भवतीति सूचितम्। ऋक्षाणां विधानान्तराभावात् दानमेव कृतवान्। सापि ततः पूर्वं कन्या अदत्तैव स्थिता। **मुदेति** भाग्यं जातमिति। भगवानपि पूजितः, कन्यायाः वरोऽपि प्राप्त इति। ततस्तस्या एव कन्यायाः दानसमये अर्हणार्थं मणिमपि दत्तवान्। एतद्-द्वयमपि न कुशोदकपूर्वकं प्रादात्, किन्तु **उपज-हार** समीपे आनीय स्थापितवानित्यर्थः ॥३२॥

व्याख्यार्थ—जाम्बवान् की सन्तति जाम्बवती इस प्रकार नाम होने से यह कन्या जाम्बवान् की केवल पाली हुई नहीं है, किन्तु उत्पन्न की हुई है। रीछों के लिये कन्या का विवाह कराने का कोई विधान नहीं है। अतः दान ही की, वह कन्या पहले कहीं दी हुई नहीं थी। अप्रसन्न होकर नहीं दी किन्तु देने से प्रसन्न ही हुआ। कारण कि, समझने लगा कि मेरा सौभाग्य है, जिससे कन्या को ऐसा श्रेष्ठ वर मिल गया और मैंने भी भगवान् का पूजन किया। अनन्तर जब कन्या का दान भगवान् को देने लगा तब पूजन के निमित्त मणि भी भगवान् को अर्पण की, ये दोनों हाथ में कुश और जल लेकर भगवान् को नहीं दी थी किन्तु भगवान् के समीप आकर भेंट की भाँति धर दी ॥ ३२ ॥

आभास—एवमन्तःस्थितिमुक्त्वा बहिःस्थितिमाह **अदृष्ट्वा निर्गममिति** त्रिभिः ।

आसाभार्थ—इसी भाँति भीतर की दशा को कहकर, अब बाहर की हालत का वर्णन "अदृष्ट्वा" से लेकर तीन श्लोकों से करते है—

श्लोक—अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥३३॥
निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ।
सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥३४॥
सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।
उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥३५॥

श्लोकार्थ—भगवान् के संग गए हुए मनुष्य गुफा में न जाकर बाहर खड़े थे, भगवान् अकेले ही भीतर गए, संगी मनुष्य भगवान् के लौट आने की प्रतीक्षा में बाहर खड़े रहे। जब १२ दिन तक भगवान् बाहर नही आए, तब दुःखी हो अपने पुर को लौट गए। उन्होंने जाकर भगवान् का बाहर न आने का समाचार सबको सुनाया। वसुदेव, देवकीदेवी, रुक्मिणी, मित्र और बान्धव; कृष्ण का बिल से बाहर न आना सुन शोक करने लगे। वे दुःखी हुए द्वारकावासी सत्राजित को शाप देने लगे, इस प्रकार उसको गाली-गलोच करते हुए कृष्ण की प्राप्ति के लिए महामाया दुर्गा के पास गए ॥३३-३५॥

सुबोधिनी—प्रविष्टो हि तस्मिन्नेव दिवसे समायास्यतीति तत्रत्या बहिःस्थिताः निरन्तराकाङ्क्षया भोजनादिरहिताः द्वादशदिववसपर्यन्तं स्थित्वा द्वादशाङ्क्षेष्वपि क्षीणेषु जना विवेकरहिताः भगवानपि शौरिरिति विशेषतस्तत्प्रभावानभिज्ञाः दुःखिताः सन्तः द्वादशाहानि प्रतीक्ष्य स्वपुरं ययुः। 'संवत्सरप्रतिमा वै द्वादशरात्रय' इति। ततो येऽपि नागताः, तेऽपि द्वारकायां स्थिताः भगवन्निर्गमाभावं श्रुत्वा दुःखिता जाता इत्याह **निशम्येति**। स्त्रीणामविवेको भूयानिति। तत्रापि पुत्रस्नेहो महानिति देवक्यादिक्रम उक्तः त्रयो मुख्याः। **अन्येऽपि** सुहृदः सम्बन्धिनः ज्ञातयो गोत्रिणश्च बिलादनिर्गतं कृष्णं श्रुत्वा अशोचन्। वस्तुतत्त्वानभिज्ञाः। कृष्णो हि भक्तहितार्थमेवावतीर्णः। कथं विलम्बं कृतवानिति। एवं सर्वेषां शोकं राजसं दुःखमुक्त्वा तामसं सात्त्विकं चाह **सत्राजितं शपन्तस्त** इति। दुरात्मायं सत्राजित्, प्रसेनवन्म्रियतामिति। एवं शापे हेतुः **दुःखिता** इति। दुःखेऽपि विशिष्टो हेतुः **द्वारकौकस** इति। मथुरां परित्यज्य देशप्रान्ते द्वारकायां स्थिताः कृष्णैकशरणाः भगवत्यनागते दुःखिता भवन्तीति युक्तमित्यर्थः। द्वारकावासित्वेन तेषां शापोऽपि सत्राजिति फलिष्यतीति सूचितम्। सात्त्विकं दुःखमाह **उपतस्थुर्महामायामिति**। माया हि

भगवदुद्गमे प्रतिबन्धिका भवति · भगवांश्च तस्यै वरं दत्तवान् 'अर्चिष्यन्ती'ति । अतो भगवता दत्तो वरः अवश्यं तेनैव सत्यः कर्तव्य इति देवतान्तरभजनापेक्षया भगवदाविर्भावार्थं दुर्गैवानुसन्धेया ॥३३-३५॥

व्याख्यार्थ– द्वारकावासी जो बाहर खड़े हो गये थे उन्होने सोचा था कि भगवान् उसी दिन ही लौट आयेंगे, किन्तु भगवान् जब उस दिन नहीं लौटे तो दूसरे दिन सोचा कि कल नहीं आए तो आज तो आ ही जाएंगे यों निरन्तर आकांक्षा करते हुए उनको वहाँ बिना भोजन के बारह दिन बीत गये, इतने दिन निराहार रहने से उनके १२ अंग शिथिल हो गये, जिससे उनका विवेक जाता रहा, भगवान् भी शूरवंश में उत्पन्न हुवे हैं इसलिये उनके स्वभाव को न जान सके थे जिससे दुःखी हो १२ दिन उनकी राह देखकर अनन्तर अपने पुर अर्थात् द्वारका चले गये "संवत्सरप्रतिभावै द्वादश रात्रय" इस वाक्यानुसार १२ रात्रियाँ भोजन के बिना संवत्सर के समान है ।

जो साथ नहीं आये थे और द्वारका में ही स्थित थे वे भी भगवान् का बिल से बाहर न आना सुन कर दुःखी हुए, जिसका वर्णन 'निशम्य" श्लोक में हुआ है–

पुरुषों से स्त्रियों में अविवेक विशेष होता है, उसमें भी फिर पुत्र का स्नेह अधिक अविवेक करता है,इसलिये पहले देवकी से प्रारम्भ किया है,सम्बन्ध में तीन मुख्य होते हैं,माता,पिता और स्त्री । दूसरे भी सुहृद, मित्र, सम्बन्धी, ज्ञाति वाले और गोत्र वालों से भी सम्बन्ध होता है, अतः वे सब भी कृष्ण का बिल से बाहर न आना सुन कर शोक करने लगे । शोक करने का कारण यह था, कि वे वस्तु के तत्वों को नहीं समझते थे । श्रीकृष्ण तो भक्तों के हित के लिये ही प्रकटे थे,अतः कैसे विलम्ब किया है ?

इस प्रकार सर्व का राजस शोक और दुःख कहकर अब तामस और सात्विक कहते है–

यह सत्राजित दुरात्मा है, जैसे प्रसेन मरा वैसे यह भी मरे तो अच्छा, इस प्रकार शाप देने लगे, शाप देने का कारण है, श्रीकृष्ण के बाहर न आने से दुःखी होना, दुःख में इससे भी विशेष कारण, यह भी था कि द्वारका वासी थे । मथुरा छोड़ कर देश के एक कोने में द्वारका है उसमें जाके रहे थे, वहाँ इनके रक्षक कृष्ण ही है उनके न आने से दुःखी होना उचित ही है । द्वारकावासी होने से, यह भी सूचना दी है, कि इन्होंने जो सत्राजित को शाप दिया है वह सफल होगा । सात्विक दुःख कहते हैं, कि माया ही भगवान् के प्रकट होने में बाधा डालती है, भगवान् ने उसको वर दिया है, कि तूझे सब पूजेंगे अतः भगवान् ने जो वर दिया है, वह वर उनको ही सत्य करना है, इसलिए अन्य देव की पूजा की अपेक्षा भगवान् के आविर्भाव के लिए दूर्गा की पूजा करनी चाहिये॥ ३३, ३४, ३५ ॥

आभास—एवं भक्तानां त्रिविधं दुःखं दृष्ट्वा स्वयमाविर्भावं कुर्वन्नेव कृतकार्यः अर्धमासव्रते कृत एवयमाविर्भूतः, स्ववाक्यमपि सत्यं कृतवानित्याह **तेषां तु देव्युपस्थानादिति ।**

आभासार्थ—इसी तरह भक्तों के तीन प्रकार के दुःख देख कृतकार्य भगवान् अपना आविर्भाव करने लगे, द्वारकावासियों के १५ दिन का व्रत पूर्ण होते ही स्वयं प्रकट हुए, अपना वाक्य भी सत्य किया जिसका वर्णन "तेषां तु" श्लोक में करते है—

श्लोक—तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषासवः ।
प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥३६॥

श्लोकार्थ— देवी के उपस्थान करने से ज्यों देवी ने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया, त्यों ही कार्य सिद्ध कर स्त्री को भी संग ले हरि भगवान् सबको आनन्दित करते हुए प्रकट हो गए ॥३६॥

सुबोधिनी—प्रत्यादिष्टाः आशिषा सह असवो येन तादृशो भगवान् स्वयमेव समागतः । असुशब्दात् समासान्तः अच्प्रत्ययः । आशिषेत्यलुक् तृतीयायाः । प्रत्यादिष्टमुपदिष्टम् । प्रतिरानुगुण्ये । देव्युपस्थानात् या आशीः तया सह भगवान् प्राणानपि दत्तवानिति । अथवा । देव्युपस्थानात् प्रत्यादिष्टाशिषा कृत्वा दुर्गाया आशीर्वादेन सवो यज्ञरूपः प्रादुर्भूतः । प्रत्यादिष्टाशिषां सवेति पाठश्चिन्त्यः । राजानं प्रति वा । वो युष्माकं भक्तानां स कार्यकर्ता सिद्धार्थः सन् प्रादुर्भूत इति । दुर्गाया वा आशीर्निराकृत्य प्रत्यादिष्टाशिषा कृत्वा स्वयमेव सर्वकामपूरको यज्ञः प्रादुर्भूतः । सिद्धार्थः स्यमन्तकसहितः । सदारः स्त्रीसहितोऽपि । हर्षयन् हरिरिति । हृष्टः सर्वाभरणभूषितः । भोजनादिना च पुष्टो, नतु ग्लानियुक्तः । यतो हरिः सर्वदुःखहर्ता ॥३६॥

व्याख्यार्थ—जिसने आशीर्वाद के साथ प्राण भी दिये वह भगवान् स्वयं ही आ गये, देवी के उपस्थान से जो आशीर्वाद मिला उसके साथ भगवान् ने प्राण भी दिये, अथवा देवी के उपस्थान से प्राप्त आशीर्वाद से यज्ञरूप भगवान प्रादुर्भूत हुए, "किसी पुस्तक की प्रति में "प्रत्यादिष्टाशिषां सवेः" पाठ है, वह विचारणीय है वा राजा के प्रति कहता है कि आप भक्तों के वह कार्य करने वाले भगवान् अपना कार्य पूर्णकर प्रकट हुए हैं अथवा दुर्गा के आशीर्वाद का निराकरण करके दी हुई आशीर्वाद से सर्व के कामनाओं के पूर्ण करने वाले यज्ञ रूप आप ही प्रकट हुए हैं, स्यमन्तक मणि को ले आने से अपना अर्थ सिद्ध किया है हर्ष उत्पन्न करते थे क्योंकि केवल मणि नही ले आये किन्तु साथ में स्त्री भी ले आये हैं और सर्व आभरणों से अलंकृत थे एवं भोजनआदि से पुष्ट हो कर आये थे, ग्लानि युक्त नहीं थे, कारण कि सर्व दुःख हर्ता हरि है ॥ ३६ ॥

आभास—ततः परमानन्दो जात इत्याह **उपलभ्येति** ।

आभासार्थ—"उपलभ्य" इस श्लोक में कहते है कि भगवान् की प्राप्ति से परम आनन्द हुआ—

श्लोक—उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ।
सहपत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥३७॥

श्लोकार्थ—मानों मर कर पीछे आए हो, ऐसे श्रीकृष्ण को कण्ठ में मणि धारण किए हुए तथा स्त्री को संग में लेकर आने को पाकर सब लोग बड़े आनन्द मग्न हो गए ॥३७॥

सुबोधिनी—असभ्यो दृष्टान्तो लौकिकभाषायां न दोषाय। श्वशुरेणैव स मणिः कण्ठे निबद्धः। अतस्तदनुरोधेन मणिः स्वकीय एवेति ज्ञापयन् स्त्रीसहितो मणिग्रीवः स्वयमागतः। न केवलं समागमने अपकीर्त्यभावः, किन्तु निरोधोऽप्यनेन जात इत्याह **सर्वे जातमहोत्सवा** इति। हृषीकेशत्वात्तथैव तेषु प्रेरितवान् ॥३७॥

व्याख्यार्थ—लोकिक भाषा में यदि असभ्य दृष्टान्त भी दिया जावे तो दोष नहीं है, ससुर ने ही वह मणि कण्ठ में बान्धी थी अतः उसके ही आग्रह से यह मणि अपनी ही है यों जताते हुए स्त्री सहित मणिग्रीव होकर आप स्वतः आ गये, आने में केवल अपयश का मिट जाना नहीं है, किन्तु इससे सम्बन्धी तथा भक्तों का आपसे निरोध भी हुआ है, जिससे सब अत्यन्त प्रसन्न हो उत्सव मनाते हुए आनन्द मय हो गये भगवान् इन्द्रियों के स्वामी हैं इसलिये उनको वैसी ही प्रेरणा की ॥ ३७ ॥

आभास—एवमपि प्राप्य उपक्रमबलीयस्त्वार्थं समानयनार्थं प्रक्रान्त इति सत्राजितायैव दत्तवानित्याह **सत्राजितमिति**।

आभासार्थ—भगवान् इस प्रकार मणि को प्राप्त कर भी, उपक्रम बलवान् होने के कारण, मणि लेआने के लिये उद्यम करने लगे इस लिये वह लाई हुई मणि सत्राजित को ही दे दी जिसका वर्णन 'सत्राजितं' श्लोक में करते हैं—

श्लोक—सत्राजितं समाहूय सभायां राजसंनिधौ।
प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण ने सत्राजित को राजा के समीप सभा में बुलाकर मणि कैसे लाए हैं, वह सब समाचार सुनाकर मणि उसको दे दी ॥३८॥

सुबोधिनी—यदादौ भगवान् विचारयति, तदेव करोति। आदौ च तस्य स्यमन्तक इति प्रवृत्तः। न केनाप्युपायेन स्वकीयं मन्यते। अत एवाग्रेऽपि न ग्रहीष्यति। निबन्धे त्वन्योऽपि हेतुरुक्तः।

व्याख्यार्थ—भगवान् पहले ही जो विचार कर लेते हैं, वह ही करते हैं, यह स्यमन्तक मणि सत्राजित की है जिससे उसको किसी भी भांति अपनी नहीं मानते है, इस कारण से मिलने पर भी आप ग्रहण नहीं करेंगे निबन्ध में तो दूसरा ही हेतु कहा है।

कारिका—सर्वात्मनान्यहृदयं न गृह्णाति हरिः स्वयम् ।
सर्वात्मनाऽप्रपन्नं च नाशायेव सुयोधनम् ॥१॥ इति ।

कारिकार्थ—भगवान् आप जिसमें दूसरे का चित्त आसक्त है, वह वस्तु बिलकुल किसी प्रकार भी स्वतः नहीं लेते हैं, जो सर्वात्मभाव से शरण नहीं आया है, उसका तो दुर्योधन की भाँति नाश ही होता है ॥१॥

सुबोधिनी—सभायामाह्वानम् । पश्चाद्दुरात्मा अन्यथा वक्ष्यतीति, लज्जां च जनयितुम्, तत्रापि राजसन्निधौ निर्भयम् । यथा राजापि न ग्रहीष्यतीत्याज्ञापयितुं वा । प्राप्त्युपायं प्रकारं वा सम्यगुक्त्वा तत्सत्तां दूरीकृत्य मणिं तस्मै न्यवदेयत् । यतो भगवान् स्वेच्छो, मारयितुं वा, न कोऽपि ज्ञातवान् किमर्थं दत्तवानिति । निवेदनं 'तवेदमानीतं गृहाणे'ति ॥३८॥

व्याख्यार्थ- सत्राजित को सभा में बुलाया, वह दुरात्मा है, लज्जा आने से दूसरी तरह कहने लगेगा, उसमें भी राजा के सम्मुख निर्भय हो कर कहेगा जैसे राजा भी न ग्रहण करेंगे और आज्ञा भी न करेंगे । प्राप्ति का उपाय स्पष्ट रीति से बताया जिससे मणि पर उसकी सत्ता नहीं है यह सिद्ध कर दिया, फिर भी मणि उसको दे दी, यद्यपि भगवान् अपनी इच्छा वाले हैं मार भी सकते हैं, किन्तु मारा नहीं किन्तु मणि निवेदन की अर्थात् कहा कि यह मणि तुम्हारी है तुम लेलो, इस प्रकार देने के गुप्त भावार्थ को किसी ने भी समझा नहीं ॥ ३८ ॥

आभास— ततस्तस्य कृत्यमाह **स चातिव्रीडित** इति पञ्चभिः ।

आभासार्थ—अनन्तर उसका कृत्य "स चातिव्रीडित" श्लोक से पांच श्लोकों में कहते हैं—

श्लोक—स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः ।
अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥३९॥

श्लोकार्थ—अनन्तर वह अति लज्जित हो नीचे मुख कर मणि ले, अपने अपराध के कारण सन्तप्त होता हुआ घर को गया ॥३९॥

सुबोधिनी—लोभाद्दण्डभयाच्च गृहीत्वा लज्जितो जातः । लोके अपकीर्तिमुत्पादितवानिति अवाङ्मुखो जातः । ततः पूर्वोक्तादेव हेतोः अपकीर्तिजननात् । अनुतापोऽपि तत एव । अतोऽस्य प्रायश्चित्ते परलोकशुद्धिर्भविष्यतीति ज्ञापितम् । न कोऽपि तस्य बन्धुरिति कमप्यपृष्ट्वा स्वभवनमेवागमत् । ननु रत्नं प्राप्य संतोषे कर्तव्ये कथमनुतापः इति चेत्, तत्राह **स्वेन पाप्मनेति । देवान्तरप्रसादापेक्षया भगवदपराधो महानिति** ॥३९॥

व्याख्यार्थ—उसको मणि लेने में लज्जा आने लगी, किन्तु लोभ से अथवा दण्ड के भय से मणि

ली, मैंने लोक में भगवान् की वृथा निन्दा करवाई, जिससे मुख नीचा कर दिया पहले कहे हुए अपकीर्ति कराने वाले हेतु से पश्चाताप भी करने लगा, अतः इस प्रकार किये हुए पाप कर्म का प्रायश्चित रूप पश्चाताप करने पर परलोक की शुद्धि होगी, यह जनाया है वहाँ उसका कोई भी बन्धु नहीं था, इसलिये किसीसे भी पूछे बिना अपने ही घर गया, मणि प्राप्त होने से तो संतोष होना चाहिये प्रत्युत इसने पश्चाताप कैसे किया ? इसके उत्तर में कहा कि अपने किये हुए भगवद् अपराध के स्मरण से पश्चाताप हुआ अन्य देव की प्रसन्नता की अपेक्षा भगवदपराध महान् है ॥ ३९ ॥

आभास - बलवता विग्रहे आकुलः सन् तमेवार्थमनुध्यायन् जात इत्याह **सोऽनुध्यायन्निति** ।

आभासार्थ—बलवान् से विग्रह करने से व्याकुल हो, उसही कर्म का ध्यान करने लगा, जिसका वर्णन "सोऽनुध्यायंस्" श्लोक में करते हैं—

श्लोक— **सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ।**
कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाच्युतः कथम् ॥४०॥

श्लोकार्थ—बलवान् श्रीकृष्णचन्द्र के साथ विग्रह हो जाने से व्याकुल सत्राजित अपने किए अपराध का विचार करते हुए सोचने लगा कि यह अपना पाप कैसे दूर करूँगा और अच्युत मुझ पर प्रसन्न हो, इसका अब क्या उपाय है ॥४०॥

सुबोधिनी—अयत्नेनापि स एवार्थः ध्यातो भवति यद्यपि विग्रहः स्वयं न कृतः, नापि करिष्यति, भगवानपि न करोति, तथापि भगवदीयैः बलवद्भिः सह विग्रहः संभविष्यतीति व्याकुलता। अयं दोषस्तदापगच्छेत्, यदि भगवान् प्रसन्नो भवेत्। तदेव विचारयति **कथं मृजामीति**। स हि देवोपासक इति तस्य प्रायश्चित्ते मतिः। **रजः** पापम्। अच्युतस्य सर्वथा नित्यधर्मस्य अवश्यंभाविनरके हेतुभूतापराधस्य कृतत्वात् तत्प्रसाद एव तदपगम इति **प्रसीदेद्वाच्युतः कथमिति** विचारयति ॥४०॥

व्याख्यार्थ – यद्यपि वह यत्न नहीं करता था तब भी वही बात ध्यान में आजाती, जो कि विग्रह स्वयं नहीं किया है, और न करेगा, भगवान् भी नहीं करते हैं तो भी जो बलवान् भगवदीय हैं उनसे साथ विग्रह होगा, इसलिये घबराहट हो रही थी, यह दोष तब मिटेगा जब भगवान् प्रसन्न होंगे उसके ही विचार करता है कि कैसे इस पाप को मेटूंगा; वह उपासना करने वाला है, इसलिये उसकी बुद्धि प्रयश्चित में हुई है यहाँ "रथ" शब्द का अर्थ है "पाप" जिसका कोई भी धर्म कभी भी कम नहीं होता है अर्थात् जिसके सर्वधर्म नित्य ही हैं, उसके अपराध से अवश्य नरक की प्राप्ति होने वाली है, जिसकी निवृत्ति उस प्रभु की कृपा से ही हो सकती है किन्तु वे प्रभु प्रसन्न कैसे हों ? इसका विचार कर रहा है ॥ ४० ॥

आभास—यथा वाक्येन अपकीर्तिर्जाता। अधुना क्रियया कथं कीर्तिर्भविष्यतीति तदाह किं कृत्वेति।

आभासार्थ—जैसे वाक्य कहने से अपकीर्ति हो गई, वैसे अब क्रिया से यश कैसे होगा? वह "किं कृत्वा" श्लोक में कहता है—

श्लोक—किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा।
अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१॥

श्लोकार्थ—मैं क्या करूँ? जिससे मेरा भला हो और अदूरदर्शी क्षुद्र, मूढ और द्रव्य लोभी को लोग शाप न देवे ॥४१॥

सुबोधिनी—मास्तु वा कीर्तिः, जनो लोकः यथा न शपेत्। शापे हेतुर्वाग्दोष एव मम, न त्वन्यदिति। स्वदोषाननुवदति **अदीर्घदर्शनमिति**। स्यमन्तकेन वचनेन वा इष्टमनिष्टं वा भविष्यतीति दीर्घदर्शनं कर्तव्यम्, तन्न कृतमिति सात्त्विको दोषः। तत्रापि हेतुः **क्षुद्रमिति**। अल्पोऽहं राजसः। महान्तो हि गम्भीरा भवन्ति। किञ्च। प्रथमवाक्योल्लङ्घनमेव मम दोषः पतितः। तत्र हेतुः **द्रविणलोलुपमिति** ॥४१॥

व्याख्यार्थ मेरी कीर्ति चाहे न हो, किन्तु लोक जैसे शाप न देवें। शाप देने में मेरी वाणी का दोष ही कारण है न कि दूसरा अपने दोष दिखाता है, मैं अदीर्घदर्शी हूँ, स्यमन्तक मणि भगवान् ले गये इस वाक्य के कहने से लाभ होगा या हानि होगी, यह विचार न किया, यह दूरदर्शिता करनी योग्य थी इसलिए मैं अदूरदर्शी हूँ, इसमें भी कारण यह है कि मैं क्षुद्र हूँ अर्थात् अल्प व नीच राजस हूँ, महान् पुरुष गम्भीर होते हैं, विशेष यह है, कि मैंने भगवान् की पहली आज्ञा न मानी, यह दोष मुझ पर पड़ा उसके न मानने का कारण यह था कि मैं धन का लोभी हूं ॥ ४१ ॥

आभास—एवं दोषत्रये कः प्रतीकार इति चिन्तायां क्रियमाणायां निमित्तभूतो मणिरेव देय इति स्वस्य स्फुरितः। तदा सूर्यः। न मणिर्देयः, अपि तु देयत्वात् कन्यैव देयेति। तर्ह्युभयं देयम्, तथा सति भगवानपि संतुष्टो, लोका अपि न वाच्यं वदिष्यन्ति इति निश्चित्य, स्वाध्यवसायमाह **दास्ये दुहितरमिति**।

आभासार्थ—इस प्रकार मेरे तीन दोष हैं इसका प्रतिकार क्या है? इस का विचार करते हुए इसके ध्यान में आया कि इन दोषों के होने का मूल निमित्त मणि है, वह मणि ही दे देनी चाहिये, मणि दी जाएगी तो सूर्य कहेंगे कि मणि मत दो, दोषों के मार्जन के लिये यदि देना है तो दान योग्य कन्या ही दो, अतः एक के देने से दोनों ही दी जाय तो अच्छा होगा भगवान् भी सन्तुष्ट होंगे और लोक भी निन्दा न करेंगे, यह निश्चय किया, उस निश्चय को "दास्ये" श्लोक में कहता है—

श्लोक—दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ।
उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥४२॥

श्लोकार्थ—उनको कन्या दूँगा, केवल कन्यारूप स्त्री रत्न नहीं, किन्तु मणि रत्न भी दूँगा, यह उपाय उत्तम है, इससे इनकी शान्ति होगी, अन्य प्रकार से शान्त न होंगे ॥४२॥

सुबोधिनी—तस्मै प्रसिद्धाय । सर्वथा ग्रहीष्यतीत्यत्र हेतुः स्त्रीरत्नमिति । यथा जाम्बवान् कायिकमपराधं कृत्वापि मणिं दुहितरं च दत्वा कृतार्थो जातः, एवमहमपि भविष्यामीत्यभिप्रायेणाह रत्नमेव चेति । नन्वन्यः भक्तिमार्गानुसारी उपायः कथं न क्रियते, तत्राह उपायोऽयं समीचीन इति । व्यवहारे अस्मिन्नर्थे अयमेवोपायः समीचीनः, अन्यथा तस्य शान्तिर्न भविष्यतीति । स्वस्यार्धदुर्बुद्धिः, भवेदेवं यदि भगवान् (न) मणिं गृह्णीयात्, सर्वथा प्रपन्नता च न कृतेति ॥४२॥

व्याख्यार्थ—कृष्ण नाम न देकर "तस्मै" पद देने का भावार्थ यह है कि लोक वेद में प्रसिद्ध जो पुरुषोत्तम हैं, वह यह ही हैं जो क्या कन्या को वे लेंगे ? इसके उत्तर में कहता है, कि सर्वथा ग्रहण करेंगे, क्योंकि स्त्री रत्न रूप है, जैसे जाम्बवान् कायिक अपराध कर भी मणि तथा कन्या देने से कृतार्थ हो गया वैसे ही मैं भी हो जाऊंगा, इस अभिप्राय से कहा कि कन्या के साथ मणि भी दूंगा इस उपाय से भी दूसरा कोई भी, भक्ति मार्गीय उपाय क्यों नहीं करते हो ? इसके उत्तर में कहता है, कि यह उपाय सुन्दर है, कारण कि यह व्यवहार का लौकिक कार्य है । लौकिक में लौकिक उपाय चाहिये जिससे यह उपाय उत्तम है । दूसरे उपाय से उनको शान्ति न होगी, जो भगवान् मणि न ग्रहण करें तो अपनी आधी बुद्धि दुष्ट हैं यों मानूँगा और पूर्ण शरणागति नहीं हुई है ॥ ४२ ॥

आभास—न केवलमेवं विचारितवान्, किन्तु कृतवानित्याह एवं व्यवसित इति ।

आभासार्थ—केवल यों विचार ही नहीं किया, किन्तु वैसा किया भी, वह "एवं व्यवसितो" श्लोक में कहते हैं—

श्लोक—एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ।
मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥

श्लोकार्थ—सत्राजित अपनी बुद्धि से ऐसा निश्चय कर अपनी सुन्दर कन्या तथा मणि स्वयं लेकर कृष्ण के पास आ उनको अर्पण की ॥४३॥

सुबोधिनी—बुद्ध्यैव, न तु कश्चित्पृष्टः । शुभां शोभनरूपाम् । विवाहे समलङ्कृतां स्वयं गृहे नीत्वा दोषपरिहाराय कृष्णाय सदानन्दरूपाय उपजहार । हेत्याश्चर्ये, कथमेवं कृतवानिति ।४३।

व्याख्यार्थ—अपनी बुद्धि से ही यह निश्चय किया, किसी दूसरे से पूछा भी नहीं, विवाह समय में जैसे समलंकृत की जाती है वैसे अलंकृत कर सुन्दर कन्या आप घर में ले जाकर दोषों के परिहार के लिये सदानन्द कृष्ण को अर्पण की "ह" पद आश्चर्य में है कि ऐसा कार्य सत्राजित ने कैसे किया ॥ ४३ ॥

आभास—ततो भगवानेकं गृहीतवान् एकं नेत्याह द्वाभ्याम् ।

आभासार्थ—भगवान् ने दो में से एक ही ग्रहण की, जिसका वर्णन दो श्लोकों में किया है—

श्लोक—तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ।
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥४४॥

श्लोकार्थ—सत्तचरित्र, सुन्दररूपा तथा उदारता आदि गुणों से युक्त बहुतों से माँगी हुई, उस सत्यभामा से भगवान् ने शास्त्रविधि अनुसार विवाह किया॥४४॥

सुबोधिनी—**तां सत्यभामामिति** । सत्येनैव भासत इति सत्यरूपा कान्तिरूपा च । यद्यपि तेन निवेदनमेव कृतम्, तथापि स्वयं यथाविधि उपयेमे । अन्यथा अन्यस्मै देया पतिष्यतीति । तत्र हेतुः **बहुभिर्याचितामिति** । सा हि पूर्वमन्यस्मै सन्दिग्धा प्रतिश्रुता । अतो विवादास्पदेति यथाविध्येव विवाहः कर्तुमुचितः । किञ्च । गुणा अपि तस्यां सन्तीत्याह **शीलेति** । शीलमन्तःकरणधर्म इन्द्रियाणां वा क्रियारूपम् । रूपं शरीरस्य । औदार्यमन्तःकरणस्य । एवमुत्कृष्टैर्गुणैरन्विताम् ॥४४॥

व्याख्यार्थ—सत्य से ही जो प्रकाशित हो रही है, इस लिये सत्यरूपा कान्तिरूपा होने से, सत्यभामा नाम से प्रख्यात थी यद्यपि सत्राजित ने निवेदन ही की थी, तो भी भगवान् ने शास्त्र विधि अनुसार उससे विवाह किया, यदि भगवान् यों न करते तो अचानक दूसरे किसी को दे दे तो, क्योंकि पहले इसकी मंगनी बहुतों ने की थी जिससे अनिश्चित रूप से देने का विचार दिखाया भी था अतः यह कार्य विवाद का विषय था इसलिए विधिअनुसार ही विवाह करना उचित था और कन्या में योग्य गुण भी हैं स्वभाव सुन्दर था जो अन्तःकरण का धर्म है अथवा इन्द्रियों का क्रिया रूप है, रूप शरीर का धर्म है, वह भी सुडौल तथा श्रेष्ठ था, उदारता थी वह भी अन्तःकरण का धर्म है । इस प्रकार उत्तम गुणों से युक्त कन्या जान, भगवान् ने उससे विधिपूर्वक विवाह कर विवाद को नष्ट कर दिया ॥ ४४ ॥

आभास—एकं गृहीत्वा द्वितीयं प्रत्याचष्टे **भगवानाहेति** ।

आभासार्थ—एक का ग्रहण कर दूसरी को लेने का "भगवानाह" श्लोक में निषेध किया—

श्लोक— भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ।
तवास्तु देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥

श्लोकार्थ—हे नृप ! भगवान् कहने लगे कि हम मणि की इच्छा वाले नही है, आप सूर्य देव के भक्त हैं, अतः यह आपके पास ही रहे; हम तो फल के भोक्ता हैं ॥४५॥

सुबोधिनी—ईश्वरत्वान्नात्र संनियोगशिष्टन्यायो वक्तुं शक्यः । **न मणिं प्रतीच्छाम** इति । विवाहे तु अहमेव प्रयोजकः । मणौ तु सर्वसम्मतिरपेक्ष्यत इति । अत एव **वयमिति** बहुवचनम् । **नृपेति** परीक्षित्संबोधनं **भगवानाहेति** वाक्ये सम्बध्यते, न तु भगवदुक्ते । राजानो हि तथा वदन्तीति ज्ञापनाय । किञ्च । द्वयं समर्पितम् । तत्रैकं ममास्तु, एकं च तवास्त्वित्याह **तवास्त्विति** । तत्र हेतु **देवभक्तस्येति** । अन्यथा सूर्यः क्रोधं करिष्यतीति भावः । तथापि निवेदितं कथं त्यज्यत इत्याशङ्क्याह **वयं च फलभागिन** इति । मणिफलमस्माकमपि भविष्यति । श्वशुरस्य धनसम्पत्तौ जामातैव भोक्ता भवतीति । चकारात् कश्चित्समुच्चितः । सत्राजितस्तु स्वात्मानं समुच्चिनोतीति प्रत्ययः । भगवदभिप्रायस्त्वकृरः । तस्मै पूर्वं तेन कन्या प्रतिश्रुता । उभयग्रहणे तस्य दुःखं भविष्यतीति भक्तहितं भक्तिमार्गं च सत्यं कर्तुं तथोक्तवानित्यर्थः ॥४५॥

व्याख्यार्थ श्रीकृष्ण ईश्वर हैं, इसलिए यहाँ "संनियोगशिष्टन्याय" लागू नहीं होता है, हम मणि की इच्छा नहीं करते हैं, विवाह करने में (मैं) हम ही प्रयोजक है, मणि लेने में सबकी सम्पत्ति की अपेक्षा है इस कारण से ही "वयं" बहुवचन दिया है, नृप यह परीक्षित के लिये जो संबोधन दिया है वह भगवान् 'आह' इस वाक्य से सम्बन्ध है, अर्थात् शुकदेवजी राजा परिक्षित को सम्बोधन कर कहते हैं कि भगवान् ने सत्राजित को यों कहा राजा लोग इस प्रकार कहते हैं यह जताने के लिये आपने जो दो वस्तु एक कन्या और एक मणि उनमें से एक वस्तु (कन्या) मेरी हो और एक (मणि) तुम्हारी हो, क्योंकि तुम सूर्य देव के भक्त हो जो मणि अपने पास न रखोगे तो सूर्य देव क्रोध करेगा। मैंने तो निवेदन कर दी है, उसका आप त्याग कैसे करते हैं ? इसके उत्तर में कहते हैं, कि हम फल के भोक्ता है मणि का फल हमको भी मिलेगा क्योंकि ससुर की धन सम्पत्ति का लाभ जवाँई लेता है, "च" पद से कोई इकठ्ठा किया हुआ पदार्थ, सत्राजित तो अपने को वा अपनी आत्मा को इकठ्ठा करता है प्रत्यय दिया है, भगवान् का अभिप्राय तो कोमल है उसने पहले उनको कन्या देने की प्रतिज्ञा की है दोनों ही ग्रहण करने से उनको दुःख होगा इसलिये भक्त का हित और भक्ति मार्ग को सत्य करने के लिये भगवान् ने वैसा ही किया है ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम-स्कंध (उत्तरार्ध) ५३वें अध्याय की श्रीमद्वल्लभाचार्य-चरण द्वारा विरचित श्री सुबोधिनी (संस्कृत-टीका) का सात्त्विक प्रमेय अवान्तर प्रकरण का सातवाँ अध्याय हिन्दी अनुवाद सहित सम्पूर्ण ।

इस अध्याय में वर्णित लीला का निम्न पद से अवगाहन करें

जाम्बवती और सत्यभामा का विवाह

राग सारंग

हरि दर्शन सत्राजित आयौ।
लोगनि जान्यौ आदित आवत, हरि सौं जाइ सुनायौ॥
हरि कह्यौ आयौ है सत्राजित, मनि है ताके पास।
रवि प्रसन्न ह्वै दीन्ही ताकौं, यह ताकौ परकास॥
आइ गयौ सोऊ तिहिं अवसर, हरि तिहिं कह्यौ सुनाइ।
यह मनि अति अनुपम है, सो सुन दै न सक्यौ ललवाइ॥
इक दिन तासु अनुज लै सो मनि, गयौ अखेटक काज।
ताकौ मारि सिंह मनि लै गयौ, सिंह हत्यौ रिछराज॥
रिछराज वह मनि तासौं लै, जाम्बवती कौं दीन्ही।
जब प्रसेन कौं बिलंब भई, तब सत्राजित सुधि लीन्ही॥
जहाँ तहाँ कौ लोग पठाए, काहुँ खोज नहिं पायौ।
तब लोगनि सौं कहन लाग्यौ, जदुराइ ताहि मरवायौ॥
हरि यह सुनत गए ता बन में, सो प्रसेन मृत देख्यौ।
सिंह खोज बहुरौ तहँ पायौ, सिंह बहुरि मृत पेख्यौ॥
बहूरौ जांबमंत पग देख्यौ, तहाँ जाइ जदुराई।
द्वादस दिवस अवधि आवन कहि, बिल में पैठे धाई॥
जामबंत दिन बीस चारि लौं, जुद्ध कियौ तब जान्यौ।
हाथ जोरि करि अस्तुति कीन्ही, मैं तुमकौं न पिछान्यौ॥
बिहँसि कह्यौ जादवपति तासौं, मनि कारन मैं आयौ।
जांबवती समेत मनि दै, पुनि अपनौ दोष छमायौ॥
संग के लोग अवधि के बीतें, कह्यौ नगर में जाइ।
मातु पिता व्याकुल ह्वै धाए, मग में बैठे आइ॥
मनि सत्राजित कौं प्रभु दीन्ही, रह्यौ सु सीस नवाइ।
सतभामा समेत लै आयौ, मनि कौं हरि सिर नाइ॥
और बहुत दायज दीन्हे उन, करि विवाह ब्यौहार।
भयौ परम आनन्द दुहूँ, दिसि मंगलचार अपार॥
मनि ताकी ताकौं फिरि दीन्ही, सुजस जगत में छायौ।
श्री गुरु चरन प्रताप चरित, यह सूरदास जन गायौ॥

॥ श्री हरिः ॥

अनुक्रमणिका

राजस – साधन अवान्तर प्रकरण — अध्याय ५० से ५६

क्र.सं.	प्रतीक	अ.	श्लो	पृ
१	अक्षिण्वं स्तद्बलं सर्वं	१	४३	५१
२	अक्षौहिणीभिर्विंशत्या	१	४	८
३	अक्षौहिणीभिः संख्यातः	१	८	१३
४	अथ कृष्ण विनिर्दिष्टः	४	२८	२१३
५	अथ तत्रासितापाङ्गी	६	३०	३२८
६	अद्भिर्गन्धाक्षतैः	४	४७	२२९
७	अद्याहं निशितैः	५	२२	२६२
८	अदृष्ट्वा निर्व्रमं शौरेः	७	३३	३७०
९	अधुनापि वयं सर्वे	५	१५	२५६
१०	अन्तः पुरवरम्	६	२६	३२६
११	अन्तः पुरान्तरचराम्	३	४२	१८७
१२	अन्योऽपि धर्म रक्षायै	१	१०	१३
१३	अपि मय्यनवद्यात्मा	४	२४	२०९
१४	अभिमृश्यारविन्दाक्षः	७	३०	३६७
१५	अलक्ष्यमाणौ रिपुणा	३	१३	१५२
१६	अलंकृत मुख्याम्भोजं	६	२८	३२७
१७	अवतीर्णो यदुकुले	२	४०	१०९
१८	अवधार्य शनैः	६	२९	३२७
१९	अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे	५	३	२४७
२०	अष्टभिश्चतुरो वाहान्	५	२७	२६७
२१	अष्टादशम संग्राम	१	४४	५३
२२	असंतुष्टोऽसकृत्	३	३२	१७३
२३	असाध्विदं त्वया	५	३७	२७६
२४	अस्ति प्राप्तिश्च कंसस्य	१	१	६
२५	अस्यैव भार्या भवितुं	४	३७	२२१
२६	अहत्वा दुर्मतिः	५	५२	२९७
२७	अहत्वा समरे कृष्णं	५	२०	२६०
२८	अहो त्रियामान्तरित	४	२३	२०९
२९	आकीर्यमाणो दिविजैः	६	२५	३२५
३०	आत्म मोहो नृणां	५	४३	२८४
३१	आनर्ताधिपतिः श्रीमान्	३	१५	१५५
३२	आयुधानि च दिव्यानि	१	१२	१९
३३	आयोधनगतं वित्तं	१	४१	५०
३४	आरुह्य स्यन्दनं	४	६	१९७
३५	आवयोर्युध्यतोरस्य	१	४८	५५
३६	आसाद्यदेव सदनं	४	४४	२२७
३७	आसीत्तदष्टाविंशाहम्	७	२४	३६१
३८	आसीत्सत्राजितः	७	३	३४२
३९	इति निश्चित्य यवनः	२	६	७५
४०	इति विज्ञात विज्ञानं	७	२९	३६६
४१	इति संमन्त्र्य दाशार्हो	१	५०	५८
४२	इति सर्वे सुसंरब्धा	५	१	२४५
४३	इत्थं सोनुगृहीतोङ्ग	३	१	१४२
४४	इत्युक्तस्तं प्रणम्याह	२	४४	११३
४५	इत्युक्तः स्वां दुहितरं	७	३२	३६९
४६	इत्युक्त्वा रथं	५	२१	२६१
४७	इत्येते गुह्य सन्देशा	३	४४	१९०
४८	उपलभ्य हृषीकेशं	७	३७	३७२
४९	उत्सार्य वामकरजैः	४	५५	२३८
५०	उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय	४	४	१९५
५१	ऋक्षराजबिलं	७	१९	३५५
५२	एक एव परो ह्यात्मा	५	४४	२८६
५३	एतदर्थोऽवतारोऽयं	१	९	१३
५४	एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्	२	९	७८

क्र.स.	प्रतीक	अ.	श्लो.	पृ.
५५	एवं चिन्तयती बाला	४	२६	२१२
५६	एवं चेदिपती राजा	४	१४	२०३
५७	एवं ध्यायति गोविन्द	१	११	१८
५८	एवं प्रबोधितो मित्रैः	५	१७	२५७
५९	एवं प्रेमकला बद्धा	४	३९	२२२
६०	एवं भगवता तन्वी	५	५०	२९५
६१	एवं मिमांसमानायां	६	३५	३३२
६२	एवं राजा समेतानां	४	३५	२२०
६३	एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या	४	२७	२१३
६४	एवं व्यवसितो बुद्धया	७	४३	३७७
६५	एवं संपृष्टसंप्रश्नो	३	३६	१७७
६६	एवं संभाषितो राज्ञा	२	३५	१०४
६७	एवं सप्तदशकृत्वः	१	४२	५१
६८	एव मुक्तः स वै देवान्	२	२१	९१
६९	एष आयाति सविता	७	७	३४५
७०	एष त्वाऽनिर्दशं	६	१३	३१६
७१	कच्चिद्द्विजवरश्रेष्ठ	३	३०	१७१
७२	कच्चिद्भद्रः कुशलं	३	३४	१७५
७३	कथं त्वनेन संप्राप्तं	६	३३	३३१
७४	करोति कर्माणि तपस्सु	२	५२	१२४
७५	करोरुमीना नरकेशशैवला	१	२७	३६
७६	कलेवरेऽस्मिन्	२	४८	११९
७७	का त्वा मुकुन्द	३	३८	१७९
७८	कामस्तु वासुदेवांश	६	१	३०६
७९	काल त्रयोपपन्नानि	२	३८	१०७
८०	कालनेमिर्हतः कंसः	२	४१	११०
८१	कालो बलीयान्बलिनां	२	१९	८७
८२	किं कृत्वा साधु मह्यं	७	४१	३७६
८३	किञ्चित्सुचरितं	४	३८	२२२
८४	किंस्वित्तेजस्विनां तेजो	२	२८	९८
८५	कुत्र यासि स्वसारं	५	२५	२६५
८६	कुरु सृञ्जय कैकेय	५	५८	३०१
८७	कृष्णमागतमाकर्ण्य	४	३६	२२१
८८	कृष्णमुष्टिविनिष्पात	७	२५	३२१
८९	कृष्णरामद्विषो यत्ताः	४	१८	२०५
९०	कृष्णान्तिक मुपव्रज्य	५	३६	२७५

क्र.सं.	प्रतीक	अ.	श्लो.	पृ.
९१	को नाम स पुमान्ब्रह्मन्	२	१३	८२
९२	को न्वयं नरवैडूर्यः	६	३१	३२९
९३	को भवानिह संप्राप्तो	२	२७	९६
९४	क्वचिद्रजांसि विममे	२	३७	१०६
९५	गदामाविध्य तरसा	६	१९	३२२
९६	गिरौ निलीनावाज्ञाय	३	११	१५०
९७	गृह्णन्निषङ्गादथ	१	२४	३२
९८	चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैः	४	१२	२०१
९९	चतुर्भुजं रोचमानं	२	२४	९३
१००	चिन्तयामास भगवान्	१	६	११
१	चिरप्रजागरश्रान्तो	२	३२	१०१
२	चिरमिह वृजिनार्तः	२	५७	१३२
३	चैलेने बद्ध्वा	५	३५	२७४
४	जग्राह विरथं रामो	१	३१	४२
५	जन्मकर्माभिधानानि	२	३६	१०५
६	जन्मन्यनन्तरे	२	६३	१३८
७	जन्मादयस्तु देहस्य	५	४७	२९२
८	जरासुतस्ताबभिसृत्य	१	२१	२८
९	जाने त्वां सर्वभूतानां	७	२६	३६३
१०	तं दृष्ट्वा चिन्तयत्कृष्णः	१	४६	५४
११	तं दृष्ट्वा जलदश्यामं	६	२७	३२७
१२	तं निर्जगार	६	४	३०९
१३	तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं	३	२९	१७०
१४	त्वं मानिनं स्वाभिभवं	४	५७	२४१
१५	तं विलोक्य जना	७	५	३४४
१६	तं विलोक्य विनिष्क्रान्तं	२	१	६९
१७	तं वै विदर्भाधिपतिः	४	१६	२०५
१८	तं शम्बरः कामरूपी	६	३	३०९
१९	तं शम्बराय कैवर्ता	६	५	३१०
२०	तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं	६	३७	३३४
२१	तत उत्पत्य तरसा	३	१२	१५१
२२	ततो गौह्यक गान्धर्व	६	२३	३२४
२३	ततो निवेशनं	४	३४	२१९
२४	ततोभूत्परसैन्यानां	१	१७	२२
२५	ततो रथादवप्लुत्य	५	३०	२६८
२६	तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं	७	२०	३५६

क्र सं.	प्रतीक	अ.	श्लो.	पृ.
१२७	तत्र योगप्रभावेण	१	५८	६४
२८	तत्र शाल्वो जरासन्धो	४	१७	२०५
२९	तथाप्यद्यतनान्यङ्ग	२	३९	१०८
३०	तथाप्यहं न शोचामि	५	१४	२५५
३१	तथाहमपि त्वच्चितो	४	२	१९३
३२	तदवेत्या सितापाङ्गी	३	२६	१६७
३३	तदामहोत्सवः	५	५४	२९९
३४	तन्मे भवान्खलु	३	३९	१८२
३५	तपः श्रद्धायुतो धीरो	३	३	१४४
३६	तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा	७	२१	३५७
३७	तमागतं समाज्ञाय	४	३१	२१७
३८	तमालोक्य घनश्यामं	२	२३	९२
३९	तमिमं जहि दुर्धर्षं	६	१४	३१७
४०	तमेकदा मणिं कण्ठे	७	१३	३५१
४१	तया परित्रास	५	३४	२७३
४२	तवेयं विषमा बुद्धिः	५	४२	२८२
४३	तस्मादज्ञानजं शोकं	५	४९	२९५
४४	तस्मादद्य विधास्यामो	१	४९	५५
४५	तस्माद्विसृज्याशिष	२	५६	१२८
४६	तस्य चापततः खड्गं	५	३१	२६९
४७	तस्या आवेदयत्	४	३०	२१५
४८	तस्यै स्त्रियस्ताः	४	४९	२३१
४९	तां देवमायामिव	४	५१	२३
५०	तां बुद्धिलक्षणौदार्य	३	२४	१६५
५१	तां वै प्रवयसो	४	४५	२२८
५२	तां सत्यभामां	७	४४	३७८
५३	तानापतत आलोक्य	५	२	२४६
५४	तामानयिष्य	४	३	१९४
५५	तामापतन्तीं भगवान्	६	२०	३२२
५६	तामाह भगवान्	६	११	३१४
५७	तेजसा तेऽविषह्येण	२	३४	१०३
५८	तेषां तद्विक्रमं	५	६	२५०
५९	तेषां तु देव्युपस्थानात्	७	३६	७२
६०	तैस्ताडितः शरौघैः	५	२८	२६७
६१	त्रयोविंशत्यनोकारव्यं	१	१५	२२
६२	त्वं तु राम यदि श्रद्धा	१	१९	२६
१६३	त्वं हि विश्व सृजां	७	२७	३६३
६४	दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं	१	५१	५८
६५	दृष्ट्वा तदुदरे बालं	६	६	३१०
६६	दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवः	३	२८	१६९
६७	दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं	५	३२	२७०
६८	द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलं	७	२३	३६०
६९	दास्ये दुहितरं तस्मै	७	४२	३७७
७०	दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ	७	११	३४८
७१	दुर्भगाया न मे धाता	४	२५	२११
७२	देवकी वसुदेवश्च	६	३८	३३५
७३	देह आद्यन्तवानेष	५	४५	२८८
७४	द्वारकां स समभ्येत्य	३	२७	१६८
७५	द्वारकायामभूत्	५	६०	३०३
७६	धनुर्विकृष्य	५	२४	२६४
७७	न कामयेऽहं तव	२	५५	१२८
७८	न त्वया योद्धुमिच्छामि	१	१८	२४
७९	नन्वन्विच्छन्ति	७	८	३४५
८०	नन्वसौ दूरमानीय	२	१०	७९
८१	नमस्ये त्वाऽम्बिके	४	४६	२२९
८२	नरलोकं परित्यज्य	२	१७	८६
८३	नरा नार्यः प्रमुदिताः	५	५५	३००
८४	न वै शूरा विकत्थन्ते	१	२०	२७
८५	नष्टं प्रद्युम्न मायातं	६	३९	३३५
८६	नातिदीर्घेण कालेन	६	९	३१३
८७	नात्मनोऽन्येन संयोगो	५	४६	२९०
८८	नारायण नमस्तेऽस्तु	७	६	३४५
८९	निचीयमानो नारीभिः	१	४०	४९
९०	नित्यप्रमुदितं श्रीमत्	२	३	७२
९१	निरीक्ष्य तद्बलकृष्णः	१	५	९
९२	निरूपिता शम्बरेण	६	८	३१२
९३	निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ	१	१६	२२
९४	निर्जित्य दिक् चक्रं	२	५१	१२४
९५	निर्भिन्नकुम्भाः करिणो	१	२५	३५
९६	निशम्य बालवचनं	७	९	३४७
९७	निशम्य देवकी देवी	७	३४	३७०
९८	निशातमसिमुद्यम्य	६	२४	३२५

क्र.सं	प्रतीक	अ	श्लो.	पृ
१९९	नीयमानेधने गोभिः	३	६	१४६
२००	पत्युर्बलं शरा सारैः	५	४	२४८
१	पद्भ्यां विनिर्ययौ	४	४०	२२४
२	परिघं पट्टिशं शूलं	५	२९	२६८
३	परिशोचति ते माता	६	१५	३१८
४	पर्यपृच्छन्महाबुद्धिः	२	२६	९५
५	पलायनं यदुकुले	२	८	७७
६	पलायमानौ तौ दृष्ट्वा	३	९	१४८
७	पश्यार्य व्यसनं प्राप्तम्	१	१३	२०
८	पितृन्देवान्समभ्यर्च्य	४	१०	१९९
९	पित्रे मगधराजाय	१०	२	६
१०	पुरं संसृष्ट संसिक्त	४	८	१९८
११	पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैः	२	५०	११८
१२	पूर्तेष्टदत्तनियम	३	४०	१८४
१३	प्रेक्षणीयं त्रिलोकस्य	२	२५	९३
१४	पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता	४	५४	२३६
१५	पेतुः शिरांसि	५	७	२५०
१६	प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ	३	१०	१४९
१७	प्रभाष्यैवं ददौ	६	१६	३१८
१८	प्रमुतमुञ्चै रिति	२	४९	११९
१९	प्रमथ्य तरसा राज्ञः	३	१७	१५६
२०	प्रलोभितो वरैर्यत्त्वं	२	५९	१३४
२१	प्रवर्त्तिता भीरुभयावहा	१	२८	३६
२२	प्रसेनं सहयं हत्वा	७	१४	३५१
२३	प्रहस्य भगवानाह	५	५	२४८
२४	प्राणावशेष उत्सृष्टो	५	५१	२९६
२५	प्राप्तौ श्रुत्वा	४	३२	२१८
२६	प्रायः कृष्णेन	७	१६	३५३
२७	बदर्याश्रममासाद्य	३	४	१४५
२८	बध्यमानं हतारातिं	१	३२	४३
२९	बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि	५	३९	२७८
३०	बन्धूनामिच्छतां	३	२५	१६६
३१	बलं तदज्ञार्णवदुर्गभैरवं	१	२९	३९
३२	बलेन महता सार्धं	४	२१	२०७
३३	बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण	६	२२	३२४
३४	ब्रह्मन्कृष्णकथा पुण्याः	३	२०	१६१

क्र.स	प्रतीक	अ	श्लो.	पृ.
२३५	भगवन् श्रोतुमिच्छामि	३	१९	१५९
३६	भगवानपि गोविन्द	३	१६	१५५
३७	भगवान्पुनराव्रज्य	३	५	१४५
३८	भगवान्भीष्मकसुतां	३	१८	१५८
३९	भगवान्भीष्मकसुतामेवं	५	५३	२९८
४०	भगवानाह न मणि	७	४५	३७९
४१	भगवांस्तदुपश्रुत्य	७	१७	३५३
४२	भवान्नारायणसुतः	६	१२	३१५
४३	भवापवर्गो भ्रमतो	२	५३	१२४
४४	भीष्मकन्या वरारोहा	४	२२	२०८
४५	भो भोः पुरुष शार्दूल	५	११	२५३
४६	मणिहेतोरिह प्राप्ता	७	३१	३६८
४७	मदच्युद्भिर्गजानीकैः	४	१५	२०४
४८	मधुपर्क मुपानीयः	४	३३	२१८
४९	मन्ये त्वां देवदेवानां	२	२९	९८
५०	मन्ये ममानुग्रह	२	५४	१२८
५१	मम चाप्यात्मजो	६	३२	३३०
५२	ममैष कालोऽजित निष्फलो	२	४७	११८
५३	माथुरैरुप संगम्य	१	३७	४८
५४	मुकुन्दोप्यक्षतबलो	१	३६	४७
५५	मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा	४	५०	२३२
५६	मृदङ्गशङ्खपणवाः	४	४२	२२६
५७	मैवास्मान्साधुः	५	३८	२७७
५८	यं वै मुहुः	६	४०	३३६
५९	यतस्त्वमागतो	३	३५	१७६
६०	यतवाङ्मातृभिः	४	४१	२२५
६१	यथा दारुमयी	५	१२	२५४
६२	यथा सयान आत्मानं	५	४८	२९४
६३	यद्यद्भगवता दत्तं	१	५७	६२
६४	यवने भस्मसान्नीते	२	२२	९१
६५	यवनोऽयं निरुन्धे	१	४७	५५
६६	यस्याऽङ्घ्रि पङ्कज रजः	३	४३	१८८
६७	यश्येष दुत्कलित रोष	७	२८	३६३
६८	यानमास्थाय जह्यं तत्	१	१४	२१
६९	यावन्न मे हत	५	२६	२६६
७०	युञ्जानानामभक्तानां	२	६०	१३५

क्र.स.	प्रतीक	अ.	श्लो.	पृ.
२७१	योगेश्वराप्रमेयात्मन्	५	३३	२७१
७२	योत्स्यामः संहताः	४	१६	२०६
७३	रथं समारोप्य	४	५६	२३६
७४	राजतारकुटैः कोष्ठैः	१	५३	५८
७५	राजा स कुण्डिनपतिः	४	७	१६७
७६	राजासीद् भीष्मको नाम	३	२१	१६२
७७	राजस्य भूमेः	५	४१	२८१
७८	रिपवो जिग्युरधुना	५	१६	२५७
७९	रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो	३	२२	१६३
८०	रुक्म्यमर्षी सुसंरब्ध	५	१९	२६०
८१	रुक्मिण्या हरण	५	५९	३०२
८२	रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं	५	१८	२५८
८३	रुरोध मथुरामेत्य	१	४५	५३
८४	लक्षणैर्नारदप्रोक्तैः	२	५	७४
८५	लब्ध्वा गृहं ते स्वः पालं	२	१६	८५
८६	लब्ध्वा जनो दुर्लभं	२	४६	११६
८७	वयं च पुरुषव्याघ्र	२	३१	१०१
८८	वरं वरय भद्रं ते	२	२०	८८
८९	वरान्वृणीष्व राजर्षे	२	४३	१११
९०	वाक्यैः पवित्रार्थपदैः	१	३४	४५
९१	वासुदेवो ह्यमिति	२	४	७३
९२	वास्तोष्पतीनां च गृहैः	१	५४	५८
९३	विकत्थमानः कुमतिः	५	२३	२६२
९४	विचरस्व महीं कामं	२	६१	१३६
९५	विप्रस्त्रियः पतिमतीः	४	४८	२३०
९६	विप्रान्स्वलाभ सन्तुष्टान्	३	३३	१७४
९७	विमोहितोऽयं जन ईश	२	४५	११४
९८	विलोक्य वीरा	४	५३	२३५
९९	विलोक्य वेगरभसं	३	७	१४७
३००	विहाय वित्तं	३	८	१४७
१	विज्ञातार्थोऽपि भगवान्	६	३६	३३३
२	वैदर्भ्यां स तु सन्देशं	४	१	१९२
३	शङ्खदुन्दुभयो नेदुः	१	३८	४८
४	शिशुपालं सममेत्य	५	१०	२५२
५	शुचिस्मितां	४	५२	२३४
६	शुश्रूषतामय्यलीकं	२	३०	१००

क्र सं.	प्रतीक	अ.	श्लो.	पृ
३०७	शौरेः सप्तदशाहं	५	१३	२५४
८	श्यामैककर्णान्वरुणो	१	५६	६२
९	श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्	२	२	७०
१०	श्रुत्वा गुणान्	३	३७	१७७
११	श्रुत्वैतद्भगवान्	४	२०	२०७
१२	श्वोभाविनि त्वं	३	४१	१८५
१३	संछिद्यमानद्विपदे	१	२६	३६
१४	स इक्ष्वाकुकुले जातो	२	१४	८३
१५	स उत्थाय चिरं सुप्तः	२	११	८०
१६	स एव जातो	६	२	३०८
१७	स एव वा भवेत्	६	३४	३३१
१८	स च मायां समाश्रित्य	६	२१	३२३
१९	स च शम्बरमभ्येत्य	६	१७	३२०
२०	स चातिव्रीडितो रत्नं	७	३९	३७४
२१	स चाश्वै सैन्य	४	५	१९६
२२	स तं विभ्रन्मणिः	७	४	३४३
२३	स तदाप्रियमाकर्ण्य	१	३	७
२४	स तावत्तस्य रुष्टस्य	२	१२	८१
२५	सत्राजितं शपन्तस्ते	७	३५	३७०
२६	सत्राजितं समाहुय	७	३८	३७३
२७	सत्राजितः किमकरोत्	७	२	३४१
२८	सत्राजितः स्वतनयां	७	१	३४०
२९	सत्राजित्स्वगृहं	७	१०	३४८
३०	सन्तुष्टो यर्हि वर्तेत	३	३१	१७२
३१	स मुक्तो लोकनाथाभ्यां	१	३३	४४
३२	स याचितो मणिं	७	१२	३४९
३३	स याचितः सुरगणैः	२	१५	८४
३४	स वीक्ष्य क्षुल्लकान्	३	२	१४३
३५	स वै भगवता तेन	७	२२	३५८
३६	स्रग्गन्धमाल्याभरणैः	४	९	१९८
३७	स्रग्गन्धवस्त्राभरणैः	४	४३	२२६
३८	सा च कामस्य वै	६	७	३११
३९	सा तं पतिं	६	१०	३१४
४०	सा तं प्रहृष्टवदनं	४	२९	२१५
४१	सार्वभौम महाभाग	२	५८	१३३
४२	सा वृष्णिपुर्युत्त	५	५६	३००

क्र सं.	प्रतीक	अ.	श्लो.	पृ.
४३	सिक्तमार्गां हृष्टजनां	१	३६	४६
४४	सिक्तमार्गा मदच्युद्भिः	५	५७	३०१
४५	सुता महिष्यो भवतो	२	१८	८६
४६	सुधर्मा पारिजातं च	१	५५	६२
४७	सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ	१	२२	३०
४८	सुरद्रुमलतोद्यान	१	५२	५८
४६	सुस्नातां सुदतीं	४	११	२००
५०	सोधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः	६	१८	३२१
५१	सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं	७	४०	३७५
५२	सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य	३	२३	१६४
५३	सोऽपिचक्रे कुमारस्य	७	१५	३५२
५४	सोऽपि भस्मीकृतो नूनं	२	३३	१०१
५५	सोऽपि दग्धाधिति मृषा	३	१४	१५३
५६	सोऽहं तवानुग्रहार्थं	२	४२	१११
५७	स्थित्युद्भवान्तं	१	३०	४१
५८	हतं प्रसेनमश्वं	७	१८	३५४
५६	हतेषु सर्वानीकेषु	१	३५	४६
६०	हनिष्यामि बलं ह्येतत्	१	७	१३
६१	हन्यमानबलानीका	५	६	२५१
६२	हरिः परानीकपयोमुचां	१	२३	३१
६३	हस्तप्राप्तमिवात्मानं	२	७	७६
६४	हस्ताः सासिगदेषु	५	८	२५१
६५	हिरण्यरूपवासांसि	४	१३	२०२
६६	क्षत्रियाणामयं धर्मः	५	४०	२८०
६७	क्षात्रधर्मस्थितो	२	६२	१३७

आश्रय के पद

रे मन कृष्ण नाम कहि लीजै ।
गुरु के वचन अटल करि मानहु साधु समागम कीजै ॥
पढ़िये गुनिये भक्ति भागवत और कहा कथि कीजै ।
कृष्ण नाम बिनु जनम बादिही वृथा जीवन कहा जीजै ॥
कृष्ण नाम रस बह्यो जात है तृषावन्त होय पीजै ।
सूरदास हरि शरण ताकिये जनम सफल करि लीजै ॥

भक्ति बिनु शूकर कूकर जैसें ।
बिगु बगुला अरु गीध घूघुआ आय जनम लियो तैसें ॥
ज्यों लोमरी बिलाउ मोर झोर रहत अन्दरनि वैसे ।
ताहि अवधिन सुत दारा वे उनें भेद कहो कैसें ॥
जीव मारि के उदर भरत हैं रहत अशुद्ध अनैसें ।
सूरदास भगवन्त भजन बिनु जैसें ऊंट खर भैसें ॥

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो ।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन सब जग माहिं अन्धेरो ॥
साधन और नहिं या कलि में जासों होय निवेरो ।
सूर कहा कहे दुविध आंधरो बिना मोल को चेरो ॥

शुद्धि-पत्र

रासज-साधन-अवान्तर प्रकरण—अध्याय ४७ से ५३

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१८	निरोघ	निरोध
२,४,६,८	१	४०-४०	५०-४७
२	६	निरोधीस्मा	निरोधोस्मा
२	१३	षड़धर्मो	षड्धर्मो
२	२२	तद्व	तद्व
५	७	तुवहतमम्	तु तद्वहमम्
५	१७	यो वे	यो वै
६	४	आलोकिकेन	अलौकिकेन
६	५	भाव	भाव
६	६	धर्म	धर्मे
६	६	कुरुद्वहः	कुरूद्वहः
६	१६	जरासन्ध अपने पिता	अपने पिता जरासन्ध
७	६	भगवान् के होते ही	भगवत्सन्निधि के कारण
७	१२	वेधव्य	वैधव्य
७	१५	दुःख का	दुःख
७	२५	तदाऽपिय	तदप्रिय
७	२२	कंतुँ	कर्तुं
८	१४	निघांसीयात्	जिघांसीयात्
८	२०	विशत्येति	विशत्येति
८	२१	अक्षोदिणीभि	अक्षौहिणीभिः
९	११	अभिसंवृत	अभिसंवृतः
९	२१	तेना	तेन
१३	९	प्रभदतः	प्रभवतः
१३	२२	यार्यत	मार्यत
१३	२१	सर्वेभभि	सर्वभभि
१४	१७	भट्टा-	भटा-
१४	२७	काष्ठदाषक	काष्ठदाहक
१५	१७	स्ताथैव	स्तथैव
१५	३०, ३३	अक्षोहिणी	अक्षौहिणी
१५	३०	होंगा ?	होगा ?
१६	३	उमके	उसके
१६	४	उनकी	उनको
१६	२२	ब्रह्मका	ब्रह्म है तो ब्रह्म का
१६	२३	वतारडेयम्	वतारोऽयम्
१६	२५	व्यादि	व्याधि
१८	१९	लौकिज्ञानं	लौकिकज्ञानम्
१९	२३	प्रेरपिस्यतीति	प्रेरयिस्यतीति
१९	२८	वाले थे	वाले नहीं थे
१९	२९	लिए है	लिए जो छः कार्य हैं
२०	९	किए हुए	करते हुए
२०	१२	एव	एष
२०	१६	ज्ञापन्नाह	ज्ञापयन्नाह
२१	१३	तव्य	तद्व्य
२१	१६	हे ईशः	हे ईश
२१	१८	रधारोहणे	रथारोहणे
२२	८	सेवा	सेना
२२	१८	कुरू	कुरु
२३	९	वृत्तौ	वृतौ
२३	१६, १७	सैना	सेना
२४	४	स्वया	त्वया
२४	८	मन्द	अमन्द
२४	१९	काश्चिद्यु मभि	काश्चिद्यु द्धमभि
२५	२	सतगुण	सत्वगुण
२५	२४	जो अब आप दूसरे देखने में आते हो। ये वे वचन प्रकरण से विरुद्ध होने	जो ऊपर से निन्दा परक अर्थ प्रतीत होता है वह प्रकरण से विरुद्ध होने से उपेक्षणीय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		से उपेक्षणीय है, क्यों कि ये निन्दा पराक्रण हैं तथा शेष भ्रमित करने वाले हैं।	है। इस प्रकार के निन्दा परक वचन केवल भ्रामक हैं।
२६	४	तो लड़	तो तू लड़
२६	५	जाओ	जा
२६	१०	वसूदेव	वसुदेव
२६	१२	पित्वेति	हित्वेति
२६	२३	सैना	सेना
२७	१६	कारतित्वा	कारमित्वा
२७	२७	शंकाद्वच	शंकाद्वय
२७	२८	मरना	मारना
२८	१३	मारना	मरना
२८	२१	वभिसृस्य	वभिसृत्य
३०	३, ६, ८	चिह्नि	चिह्नि
३०	६	पुरी के	पुरी की
३०	६	महत्व	महलों
३०	२६	अट्टालिकाओं	अट्टालिकाएं
३१	२	बहुत मूर्च्छित	मूर्च्छित
३१	१४	हिताम्	हितम्
३१	१७	निवतको	निवर्त्तको
३१	२६	सर्भ	सूर्य
३२	२३	नित्यत	नित्यता
३४	६	निर्षा्गस्	निषङ्गात्
३४	२६	ममस्थान	मर्मस्थान
३५	२	निर्भिन्कुम्भाः	निर्भिन्नकुम्भाः
३५	२	शरवक्ण	शरवृक्ण
३५	१०	मेषातिति	मेषामिति
३५	१४	मेर्षा	मेषां
३५	२२	देव	दैव
३७	२१	अश्चास्त	अश्वास्त
३८	७	हस्ति	हस्ती
३८	३०	विनिघ्नात।रीन्	विनिघ्नतारीन्
३८	३१	निघ्नाता	निघ्नता
३६	७	निषङ्गदि	निषङ्गादि
३६	१२	मुसल से खेंच लड़ाई में मारने के लिए खड़ा किया	हल से खींच कर मुशल से मारते हुए
४०	३	वेतुमाह	हेतुमाह
४०	२७	पुरुगार्थ	पुरुषार्थ
४१	१०	वणनेनेत्याह	वर्णनेनेत्याह
४१	१४	प्रवर्त्तेति	प्रवर्त्तेतेति
४१	२७	अवब्यनुष्य	मनुष्य
४२	१५	बद्धा	बद्ध्वा
४३	२१	महता	महत्ता
४४	२	कन" माया से	कन" न्याय से
४४	२७	हुए गण है	हो गया है
४५	७	बोधेने	बोधने
४६	१६	दैवामानुष	दैवमानुष
४७	८	दग्रिन	दग्रिम
४८	१०	सेनिक	सैनिक
४८	२७	मगध	मागध
५०	५	ब्रह्मधो	ब्रह्मघो
५०	२०	प्रथक्	पृथक्
५०	२५	दुःखके अभाव को	दुःख को
५१	२०	कृष्थतजसा	कृष्ण तेजसा
५२	३	कृत्वपद पर	कृत्व
५२	२०	सा	स
५३	१४	पत	तप
५४	११	कीलमवनकी	कालयवन से
५४	२३	ही हेतु जिसका	वैसे-करने के लिये
५५	६	बृहद्वान्	बृहद्नात्
५६	११	पुकान्तस्य	पुक्रान्तस्य
५७	१०	जैसे	जिससे
५७	२३	दी हुई	दिये हुए
५७	३१	चड़ाई	चढ़ाई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८	३	निश्चित्	निश्चित
५८	१८	वस्तु	वास्तु
५६	१५	भूभिवत्	भूमिवत्
५६	२४	शन्कुयात्	शक्नुयात्
५६	२५	षड्गुणे	षड्गुणे
५६	३०	नपुण्यं	नैपुण्यं
६०	४	भवतिः	भवति
६०	१०	दाशार्हे	दाशार्हः
६०	२५	वहां बनाई	यह बनाई
६०	२६	उनके गुण	उनके छः गुण
६१	६	उपवन थे जिनमें फलों के पेड़ अधिक लगे हुए थे	जिनमें फलों के वृक्ष अधिक हों उसे उपवन कहते हैं
६१	७	चारों ओर उपवन थे	चारों ओर उद्यान तथा उपवन थे
६४	११	कि होने से भी	कि शुक्क होते हुए भी
६४	१८	स्वासिद्धये	स्वसिद्धचे
६५	८	स्थतान्	स्थितान्
६५	२५	अनुपति	अनुपपत्ति
६८	३	'तं विलोक्य'	'तं विलोक्य' इन बारह
७०	२१	कहते थे	कहते
७२	१५	निरूपरू	निरूपण
७३	३	रविन्दाक्षो	रविन्दाक्षो
७३	७	भाविर्भूतः	आविर्भूतः
७३	१५	श्रीबत्सो	श्रीवत्सो
७३	१६	त्वमुपद्यत	त्वमुपपद्यत
७३	१०	सतोगुण	सत्वगुण
७३	२२	अर्थ	अर्थात्
७३	२३	बाद्य	बाध
७३	२४	जिसको	जिसके
७३	२४	जिससे	इससे
७३	२७	अरबिन्दाक्ष	अरविन्दाक्ष
७४	३	का है	की हैं
७४	४	षड़	षड्
७४	११	प्रसर्पादिति	प्रसर्पेदिति
७४	२३	आकर	जाकर
७४	२४	और वह	उसे
७४	२६	आप	पाप
७५	३	उडते भी नहीं है तथा पैदल जा रहे है	पैदल जा रहे हैं
७६	४	कितनी दूर जाने पर	शंका होती है कि कुछ दूर जाने पर जब वे पकड़ में न आये तो
७७	६	नहीं लौटाया ?	नहीं लौटा ?
७७	११	वहां मुचुकुन्द	मुचुकुन्द
७७	१४	जय	जयादिनेव जय
७८	१२	अनुशरण	अनुसरण
७८	१७	प्राप्त हुआ	प्राप्त न कर सका
७८	१६	क्षिप्तौ	क्षिप्तो
७६	८	कोई भक्त का	कोई भगवान् का
७६	६	यदि भगवान् का	यदि भक्त का
७६	६	अथवा भगवान् का द्रोह करे तो वध जैसा सामान्य दण्ड देना चाहिए और भक्त का द्रोह करे तो वध का दण्ड देना चाहिए इस वाक्य के	इस वाक्य के
८०	१२	लङ्गा	लङ्गा
८१	१३	देहेजेनाग्निना	देहजेनाग्निना
८१	१४	उसके	उसकी
८१	२१	अग्नि के स्पर्श से	अग्नि अग्नि के स्पर्श से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८३	२	यवनादना	यवनार्दनो
८४	१०,	षड्	षड्
८५	२	पयर्वसानपरा	पर्यवसानपरा
८६	१२	हाथी	अमात्य
८८	२०	एवेश्वरु	एवेश्वर
८९	७	अभिकाररूपत्वं	अधिकाररूपत्वं
८९	१२	तस्याम	तस्यात्म
८९	३१	मौक्ष	मोक्ष
९०	२१	वह विष्णु	उस विष्णु को
९०	२४	२८ युग	२८ वें युग
९१	१४	जाकर नींद	जाकर देवताओं से दी हुई नींद
९३	९	को देख	के देखने
९३	२०	यवासमिति	यवाससमिति
९३	२०	लोकिक:	लौकिक:
९३	२२	भलसिद्धि	फलसिद्धि
९३	२७	रुच्य	रुच्यु
९३	३०	तत्तमृगेन्द्रो	मत्तमृगेन्द्रो
९४	५	चतुर्भुज	चतुर्थ
९४	७	शरण	षरण
९५	१७	फलसाधनः	फलसाधन–
९६	३	त्वव	त्वैव
९९	५	डस्टजत्	ऽसृजन
९९	७, २६	भूर्त्तिमान	मूर्त्तिमान्
९९	२८	हसने	हमने
१००	२	दीपकी प्रभा-विशेष है	अत एव दारुमय करीष (कण्डे) से दीपक की प्रभा अधिक होती है
१००	४	पतली सील पट	कली जैसी
१००	१८	कर्मति	कर्मेति
१००	२२	ताति	तीति
१००	२७	अर्थात् क्या रूप है और	कैसे अर्थात्
१०१	५	रजक	जक
१०१	१७	हैं: प्रभु	हैं प्रभो
१०१	२२	छोडा	दिया
१०२	६	प्रसिद्धरुक्ता	प्रसिद्धिरुक्ता
१०२	८	गव	गर्व
१०२	१३	सवाधन	सम्बोधनं
१०२	१४	स्वपोरुष	स्वपौरुष
१०२	१५	पून	पुन
१०२	२०	क्षेत्रिय	क्षत्रिय
१०२	२३	युवनाश्व पिता का नाम पितामह का	युवनाश्व पितामह का नाम मान्धाता पिता का
१०३	२	इसलिए वह कही नही, इस वास्ते	इस वास्ते
१०३	९	लक्ष्मीवान	लक्ष्मीवान्
१०३	१४	करते हैं	करते हो
१०४	१०	मुक्त्वा	मुक्तवा
१०५	४	जैसे मेध	जैसे
१०५	१२	गिनती मैं भी करने मैं असमर्थ	गिनती करने में भी मैं समर्थ
१०६	८	भगवान् स्वरूप	भगवत्स्वरूप
११०	३	पुत्र है इसलिए वसुदेव है	पुत्र है,
११०	२१	योधे	योद्धा
१११	१३	पूर्वामिति	पूर्वमिति
१११	१४	में	मैं
१११	१८	तुम से	तुम मे
११३	९	स्तत्वैव	स्तुत्वैव
११३	२२	दास्यामि	ददामि
११३	२२	दूंगा	देता हूं
११३	२४	भयोदशमि:	त्रयोदशभि:
११४	७	दू:ख	दु:ख
११४	२३	पन्नाम्नों	पुन्नाम्नो
११५	७	स्तुतिकर अति-क्रमण	निरूपण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११५	७	और एक	और उसके अतिक्रमण के लिए एक
११५	१८	परमार्थ	परमानन्द
११५	२७	योषित	योषित्
११६	४	बोध	बाध
११६	१०	गीदड़	भेड़िया
११६	१७	वचितः	वञ्चितः
११६	२२	शास्त्र से दूसरे विवेक की	शास्त्रज्ञानसंपन्न विवेकी
११६	२२	राजस के	राजस की
११६	२२	वञ्चना	वञ्चना का
११७	१७	भेजने के	भजने के
११७	२०	कहाँ	कहा
११८	३	कहते	कहता
११८	७	और इस	और मरणधर्मा इस
११८	१४	भवदीयेसु	भवदीयेषु
११९	११	आसक्तिवान	आसक्त
११९	११	समय	ममता
११९	११	किया	की
११९	१५	नाशवान	नाशवान्
११९	१९	ऽअस्मिन	ऽस्मित्
१२०	२४	धातुकाः	घातुकाः
१२१	१७	चन्तयेति	चिन्तयेति
१२१	२१	सद्धार्थ	सिद्धार्थ
१२२	१५	दसंग	दुसंग
१२२	१५	भभार	भूभार
१२२	१९	प्रमन्तं प्रमन्त	प्रमत्तं प्रमत्त
१२२	२२	उच्चे	उच्चैः
१२३	१३	अत एव	यही
१२३	१५	सर्प काल का रूप है	कालका रूप सर्प की तरह है
१२३	१६	वावृत	व्यावृत
१२३	१६	रहता है	रहता है वह आखु (चूहा है)
१२३	३०	दिक्चक्रम	दिक्चक्रम्
१२३	३०	तीन प्रकार बताते हैं	तीन प्रकार के दोषों को बताते हैं
१२७	१०	मानुष देह	मानुषोदेहो
१२७	११	सन्तोष	सन्तों
१२७	२८	प्रवृत्यभवश्च	प्रवृत्यभावश्च
१२८	१०	स्वत	स्वतः
१२८	१४	बन्थन	बन्धन
१२८	१६	सत	सत्व
१२९	३१	स्वामाराध्य	त्वामाराध्य
१३०	४	तादृशश्य	तादृशस्य
१३०	३०	दोनों ही हैं तो	तो
१३०	३१	कामनाएँ	कामनाएँ दोनों ही हैं
१३०	३१	श्रुति	स्तुति
१३१	१५	केवल	कैवल्य
१३१	१६	पृथक	पृथक्
१३१	३०	पदा	पैदा
१३३	१५	सतोगुण	सत्वगुण
१३५	१८	कुलटा	पतिव्रता
१३५	२४	कहते हैं	कहते हुए
१३६	१२	प्रभतियों	प्रभृतियों
१३६	२६	मुझ मैं तुझको	मेरे में तुम्हारी
१३८	२	थर्म	धर्म
१३८	११	घोर है	कठोर है
१३८	१२	को मारना	को भी मारे
१३८	१५	पास	पाश (जाल)
१३८	२३	कहते में	कहते हैं
१३८	२६	सुहृद	सुहृद्
१४०	५	टीका के	टीका का
१४३	१३	नयतं	नियतं
१४३	२१	सतयुग	सत्ययुग
१४५	३	बादा	बाधा
१४५	१०	द्वन्दों	द्वन्द्वों
१४६	७	तातस	तामस
१४६	७	ब्राह्मणों का	ब्राह्मणों के
१४८	७	लगे	लगा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४८	१२	वहीं	नहीं
१५०	७	भगवत तः	भगवतः
१५०	२५	जरासन्ध	जरासन्धस्य
१५२	१६	अपंग	अपने
१५६	५	भिषक्ति	भिषिक्त
१५७	३	सुध	सुधा
१५६	२	मुग्द	मुग्ध
१५६	८	विधिनुसार	विध्यनुसार
१६०	१२	हुई दूसरी	दूसरी
१६०	२५	शाल्व और सात्विक भी महान् हैं	शाल्व सात्विक और महान् है
१६१	४	वह कहनी चाहिए जो उक्तम होवे और जो	बहुत कही जा सकती है किन्तु उसमें से जो
१६४	२१	उत्पति	उत्पत्ति
१६४	२२	भगवात्	भगवान्
१६५	४	विद्वान	विद्वान्
१६५	१४	कुलस्थानीयां	कुलस्थातीया
१६५	१६	विद्ययोप	विद्योप
१६५	२१	सदृश्यार्थ	सादृश्यार्थ
१६६	१५	उपरोक्त	उपर्युक्त
१६६	२४	हे राजा	हे राजन्
१६६	२४	देनी	देना
१६८	१२	कार्य	कर्म
१६८	१३	कि	न कि
१६८	२३	'द्वारकांस'	'द्वारकांस' इत्यादि दश
१६६	७	विष्ठ	विस्ट
१६६	८	पतिदशनं	पतिदर्शनं
१६६	१८, २०	ब्राह्मण्यदेव	ब्रह्मण्यदेव
१७१	६	यों करते हैं॥२६॥	यों करते हैं तदन्तर भगवान् अपने हाथ से ब्राह्मण के पैरों को दबाते हुए पूछा। रुक्मिणी में आसक्ति होने से व्यग्रता होगी ऐसी आशंका न हो इसके लिये अव्यग्र पद दिया है अर्थात् ब्राह्मण से शान्ति से प्रश्न किया ॥२६॥
१७१	१८	तू	तुम
१७१	१८	रहा है	रहे हो
१७३	२	परमेश्वर उस पर	परमेश्वर
१७४	१८	शान्ताचित्त	शान्तचित्त
१७४	२०	षड्गुणा	षड्गुणा
१७८	२०	ताक्षण्वन्त	'अक्षण्वन्तः
१८२	५	आप शेर	आ
१८२	६	दूर से स्पर्श करता है	दूर से भी स्पर्श नहीं करता है
१८२	११	महता	महती
१८५	६	गदग्रज	गदाग्रज
१८५	१७	न लिए जाते	मुझे न ले जाय
१८५	१८	श्वोभवि	श्वोभावि
१८५	१६	उपरोक्त	उपर्युक्त
१८५	२४	पराक्रम ही	पराक्रम ही जिसका
१८६	३	मयसार्थ,	मपसार्य,
१८६	१५	आपको	मुझे
१८६	२२	अपने सम्बन्धियों की	अपनी
१८६	२४	इसलिए बलात्कार करके भी	बलात्कार करके
१८७	४	उपरोक्त	उपर्युक्त
१८७	१२	दर्शन को जावे	दर्शन को बाहिर जावे
१८७	१२	रीति है अतः मैं शोभामाला में जाने के लिये वाहिर	रीति है ॥४२॥
१८८	१०	टापू	टाप्
१८८	१२	दूसरे विवाह	विवाह

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८८	१२	दिन तों	दिन ही तो
१८९	१७	प्रभति	प्रभृति
१९०	५	वसुदेव	यदुदेय
१९१	८	सुबोधिन्यानुसार	सुफोधिन्यनुसार
१९१	१६	अचछी	अच्छी
१९२	१४	पाणि	पाणिं
१९४	७	शिला	शिखा
१९५	१३	संयुज्यताम्	संयुज्यताम्
१९६	२०	पराजय	पराजित
१९७	१९	राजाकुण्डिन	राजा स कुण्डिन
१९८	१७	भरणौर्वि	भरणौर्वि
१९९	२४	भाजयित्वा	भोजयित्वा
१९९	२५	राजा	राजा ने
२०३	१६	निदु सृतया	निर्दुष्टतया
२०३	१४	षङ्भिः ।	षड्भिः ।
२०३	१६	इस मकार	इस प्रकार
२०४	३	कराता है	करता है
२०४	१०	मदच्मुद्भि	मदच्युद्भि
२०४	२०	साठ घोडे	साठ वर्ष की आयु वाले
२०५	३	"त्र वै विदर्भा-तिपति	तं वै विदर्भा-तिपतिः
२०६	४	पांडूक	पौण्ड्रक
२०६	२२	मित्र	मिष
२०७	१०	व लेन	ब लेन
२०८	१२	बराहोह भीष्मक	युवावस्था को प्राप्त भीष्मक
२१०	२६	आ है,	है,
२१४	८	मदथ	मदर्थे
२१४	२०	संवेश	संदेश
२१८	५	थर्म	धर्म
२१८	२०	श्रुस्वा	श्रुत्वा
२१९	१५	आमे	आगे
२२०	६	अथवा इस	अथवा आवश्यक है इस
२२०	११	यथावलं	यथाबलं
२२२	१६	ईस	इस
२२४	६	योद्धों से	योद्धाओं से
२२४	१४	कठिनाई न होगी	कठिनाई होगी
२२४	२५	दातुरवे	दातुरेव
२२५	११	ला	का
२२५	१५	योद्धे	योद्धा
२२६	१८	बन्धी	वन्दी
२२७	२४	पूजत्नन्तरमेव	पूजनानन्तरमेवे
२२८	९	ब्रह्मणों	ब्राह्मणों
२२८	२१	भवपत्नियों	भवपत्नी यों
२३१	३	भल	फल
२३१	७	आशीर्वाद की	आशीर्वाद दिया
२३२	१०	हस्त में	हस्त से
२३२	१२	मुद्रीपशो	मुद्रोपशो
२३२	२०	ने रत्न	वह रत्न
२३२	२५	दूशण	दूषण
२३३	१३	मथ्ये	मध्ये
२३४	१५	डरे हुए नेत्रों वाली	चंचल नेत्रोंवाली
२३५	२६	स्यदुदारहास	स्तदुदारहास
२३८	१०	गए, कि	गए, न कि
२३८	२५	मौजद	मौजूद
२३९	२४-२५	अतः परामेवसिद्धचा	यह हटाना है
२४१	३	रण रूप है	रमण रूप है
२४१	१३	शृगालमाध्यम्	शृगालमध्यात
२४१	१७	चावल का ऊर्ध्व यूप	कटक का ऊर्ध्व एवं यूप
२४१	२४	क्षरं	क्षयं
२४७	१७	अधवा	अथवा
२४८	१८	शास्वं	शालवं
२५०	१३	घसीट कर	खींच कर
२५२	७	"च"	"च" से
२५२	११	अप्रसन्न मुखफेर	युद्ध से विमुख हो
२५२	१२	उसने	उसे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५२	१२	किया है	हैं
२५३	२	का न होना	का अभाव था
२५३	२	बहुत ही जताने	सान्त्वना देने
२५४	१२	विस्तृत	विवृत (नंगे)
२५४	१३-१४	किसी देवता का रूप धारण कर उसको	किसी देवता के रूप में उस पुतली को
२५४	१६	तैने	तैसे
२५७	२	इस उनके	उस
२५७	१७	का राजस	अथवा राजस काल
२५८	२	तद्धहय	तद्गृहय
२५८	२०	रुक्म	रुक्मी
२५९	२३	मार्ग	मार्ग से
२५९	२५	क्यों कि	और
२५९	२५	गया था	गया था तब
२६०	५	रुक्मी	रुक्मी ने सुनते हुए
२६०	५	प्रतिज्ञा करने लगा	प्रतिज्ञा की
२६०	११	सन्त राजाओं	सब राजाओं
२६०	११	करने लगा	की
२६०	२४	र्गच्छति	न्निर्गच्छति
२६१	३	अग्नि पुनः	अग्नि को पुनः
२६१	३	लौट आती है	एकत्रित की जाती है
२६१	७	कुण्डिव	कुण्डिन
२६१	१३	मिलाप	युद्ध
२६१	२२	मिलूं यह	युद्ध करूं
२६१	२३	मिलन	युद्ध
२६२	५	दुदुद्धि	दुर्बुद्धि
२६२	३	तीक्षण	तीक्ष्ण
२६३	१९	विदुः प्रमाणं	विदुः प्रमाणं बल
२६४	४	को मारे	को तीन बाण मारे
२६६	२६	षड्भिः	षड्भिः
२६७	१६	धनुरात्त	धनुरादत्त
२६७	२५	परङ्गनि	पराङ्गानि
२६८	२	बोधित किया	वेधित किया
२६८	१७	छन्दसः	छान्दसः
२३८	१८	तामरान्तम्	तोमरान्तन्
२६९	२३, २४	रुक्म	रुक्मी
२७३	२२	सतोगुण	सत्वगुण
२७४	३	तावन्मर्दुः	तावन्ममर्दुः
२७४	८	निर्वापणं	निर्यापणं
२७४	१०	केगल	केवल
२७४	२७	यादवों में	यादवों ने
२७५	४	भगवान् का	भगवान् से
२७५	५	साडे सबह	साढे सत्रह
२७५	७	कृष्णानितक	कृष्णान्तिक
२७५	१४	कय	कथ
२७५	२३	कृष्णपुरम्	कृष्णपरम्
२७६	३	वध	वध के
२७६	१५	बलरामज	बलरामजी
२७६	२५	वामनस्तव	स्वामिनस्तव
२७७	५	कहना योग्य नहीं है	कहा जायगा
२७७	२५	भासूयेथाः	मासूयेथाः
२७७	२६	मावकचित्त	भावकचित्त
२७८	२	वेतुमाह	हैतुमाह
२७८	२०	अतुत्यता	अतुल्यता
२८०	१४	दितिलाल	दिति लोक
२८०	१४	तीक्ष्णशास्त्राणि	तीक्ष्णशस्त्राणि
२८१	१७	राजज्य	राज्यस्य
२८२	४	मरवाएगा	मारेगा
२८२	७	वे फंके	बे आक्षेप करे
२८२	१६	तद्देयं	तवेयं
२८३	८	पने	आपने
२८३	२३	मात्ममोह	आत्ममोह
२८३	२७	समजाते	समझाते
२८४	२०	प्रतिपाद	प्रतिपादन
२८५	२२	तृणां	नृणां
२८५	२९	सुतराम	सुतराम्
२८६	१७	रहने	रखने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८७	४	तत्रापिश्वर	त्रंत्रापीश्वर
२८८	१४	न्यायामत	न्यायमत्त
२८८	२१	हृस्वादि	ह्रस्वादि
२८८	२२	गोपा	इव
२८९	१०	मेन्तः	मन्तः
२८९	१६	वलक्ष्ण्य	वैलक्षण्य
२९१	३	आत्महेत्	आत्महेतु
२९१	९	स्तरूपं	स्वरूपं
२९२	५	दृगपाभ्यां	दृग्रूपाभ्यां
२९३	११	तस्योक्रान्त्या	तस्योत्क्रान्त्या
२९३	१८	अर्थात् जाता है	आता है
२९३	२२	होगा कितु	होगा ऐसा नहीं किन्तु
२९३	२५	चन्द्रमा नाश	चन्द्रमा का नाश
२९३	२६	नाश	नष्ट
२९३	२६	उत्पन्न होता है	उत्पन्न होता है इस प्रकार होता है
२९३	२७	उसका	इसका
२९४	१९	वह मिथ्या है	वह ही मिथ्या है
२९४	२०	असत्	असत्य
२९४	२०	जेसे	जैसे
२९४	२३	अज्ञान है	अज्ञान को प्राप्त करता है
२९४	१४	नेहस्य	देहस्य
२९७	२१	रुक्म	रुक्मी
२९८	१०	भूमियान	भूमियान्
२९८	१२	का जात कर	जो जीत कर
२९८	२२	काद्विजत्व सिद्ध	कीद्विजत्वे सिद्धि
२९९	२४	मयास्मन्बिबाहे	मस्मिन्विवाहै
३००	८	बधु	वर वधू
३०१	२	जसे	जैसे
३०२	१	ह्यभये	ह्युभये
३०२	१६	संभमो	संभ्रमो
३०२	७	रमयोतेतं	रमयोपेतं
३०२	११	केवशेस्यै	केवलस्यै
३०६	१७	प्रद्यृम्न	प्रद्युम्न
३०६	२३	उससे	उनसे
३०७	११	द्राव्यतीति	द्रावयतीति
३०७	२३	सारूप्पता	सारूप्यता
३०७	२४, ३०	प्रविष्ठ	प्रविष्ट
३०९	६	नृहम्	गृहम्
३०९	१०	दित्सध्य	दित्य
३०९	११	कातरूप	कामरूप
३१०	१	बल्वान	बलवान्
३१०	८	चेतन्य	चेतन
३१०	९	करेगा	करता
३१०	१०	बालक होते हुए भी रुकावट	बालक रुकावट
३१०	१९	नर्तादभुतम्	नादभुतम्
३१०	२६	वान	वान्
३१२	१९	पत्युर्निदाध	पत्युर्निर्दग्ध
३१२	२६	शिशु	शिशुं
३१२	२६	स्नेह	स्नेहं
३१४	१४	स्भावोद्नि	स्वभावोद्गि
३१५	१८	फैले हुए	प्रकट
३१५	१९	सम्यक	सम्यक्
३१६	ड़५	इसका पता	ऐसी प्रसिद्धि
३१६	२०	सूर	सुर
३१६	२७	शम्बासुर	शम्बरासुर
३१७	२१	माः	मार
३१७	२७	बताती	बताते
३१८	३१	रूम	रूप
३१९	२६	विधा	विद्या
३१९	३३	पितृ रूप	रूप
३१९	१	सस्मत	समस्त
३२०	३	आविर्भूते	आविर्भूत
३२०	१२	तमक्षेपैः	तमाक्षेपैः
३२१	२३	ने	में
३२१	२३	कबुल	कबूल
३२२	१६	ध्वनी	ध्वनि
३२३	१६	लाता	जाता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२३	२२	खिये	लिये
३२३	२३	प्रद्युम्ल	प्रद्युम्न
३२५	१०	श्वश्रवोजसाहरत्	श्मश्रूवोजसाहरत्
३२७	२	ताम्रक्षं	ताम्राक्षं
३२९	१८	उतकर्ष	उत्कर्ष
३३०	२७	गृहत्	गृहात्
३३२	१२	दे वना	देखना
३३२	१३	क	का
३३२	१५	उत्पन	उत्पन्न
३३२	१८	का	की
३३६	६	य	यं
३३६	३७	प्रदशनार्थम्	प्रदर्शनाथम्
३४४	७	पहचाना	पहचान
३३६	२८	अल्पबलवाते	अल्पबलवाले
३४८	८	विप्रैन्यवेशयत्	विप्रैर्न्यवेशयत्
३५०	८	नैवाथकामुक	नैवार्थकामुक
३५१	२५	मणियत्रव	मणिर्यत्रैव
३५१	२७	प्रर्थात्	अर्थात्
३५१	२७	जते	जावे
३५२	११	क्रीड़नक	क्रीडनकं
३५२	१२	सत्राजितपयतप्यत	सत्राजितपर्यतप्यत
३५२	२७	आसाभार्थ	आभासार्थ
३५३	२७	से लिये	के लिये
३५५	३०	नदीं	नहीं
३५६	२	शकित	शंकित
२५७	२३	आभ प्रायेणाह	अभिप्रायेणाह
३५८	१	जगा	लगा
३५८	२०	सेवककृत	सेवककृतैः
३५८	२९	गोवर्धनदरेनुभावो	गोवर्धनादेरनुभावो
३५८	३०	अतानुभावान	अतोऽनुभावान
३६०	३१	वस्तुस्थत	वस्तुस्थिति
३६१	२२	परुषा	परुषः
३६२	—	पृस्ठ ३२१	पृष्ठ ३६२
३६४	६	सवभूतानां	सर्वभूतानां
३६४	२८	त्व	त्वं
३६४	३३	राक्षसम्थानानि	राक्षासस्थानानि
३६४	३४	स्वरूप	स्वरूपं
३६५	१०	ज्ञन	ज्ञान
३६६	६	इसलित	इसलिए
३६७	३७	भगवात्	भगवान्
३६७	२७	शीरर	शरीर
३६८	६	भा	भी
३६९	६	वथं	कथं
३६९	८	अग्रना	अपना
३६९	१२	इत्युतः	इत्युक्तः
३७०	७	निगतम्	निर्गतम्
३७०	२०	दिववसपर्यन्तं	दिवसपर्यन्तं
३७०	२९	सुहृत	सुहृदः
३७०	२९	उपतस्थुमहामाया-मिति	उपतस्थुर्महामाया मिति
३७२	६	प्रस्न्न	प्रसन्न
३७२	१६	गज्ञरूपः	यज्ञरूपः
३७२	१७	अशीर्वाद	आशीर्वाद
३७२	१९	प्रादूर्भूत	प्रादुर्भूत
३७२	२८	पुनरिवाग्तम्	पुनरिवागतम्
३७५	५	प्रयुत	प्रत्युत
३७५	१६-१८	करिष्यति	करिष्यति
३७५	१९	संभविष्यतेति	संभविष्यतीति
३७५	८०	अय	अयं
३७५	२६	उसक	उसका
३७५	२६	प्रयश्चित	प्रायश्चित
३७५	२७	धम	धर्म
३७६	१२	[illegible]ष्टमनिष्ट	इष्टमनिष्टं
३७७	१६	...	लौकिक
३७९	२	वय	वयं
३७९	११	क्रर:	क्रूरः
३७९	१२	तत्रैक	तत्रैकं
३७९	१३	सत्य	सत्वं

श्री राजस्थानी प्रकाशन मंदिर (रजिस्टर्ड)
जोधपुर (राजस्थान)